अंतस

अर्द्धवार्षिक पत्रिका, अंक-15, 26 जनवरी, 2019

सांस्कृतिक वैविध्य

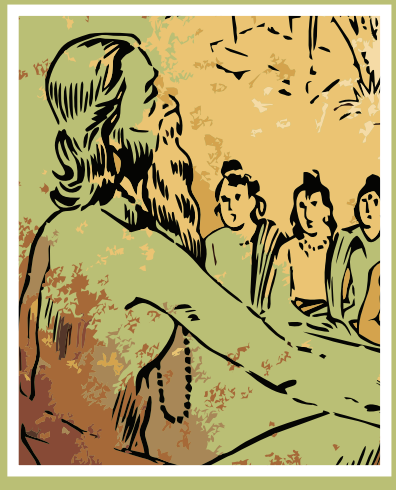

भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान कानपुर

नियम- निर्देश

हॉल-9

- अंतस के आगामी अंक में प्रकाशन हेतु अपनी मौलिक एवं यथासंभव अप्रकाशित रचनाएं भेजने का कष्ट करें।
- रचनाएं यथासंभव टाइप की हुई हों, रचनाकार का पूरा नाम, पद एवं संपर्क विवरण का उल्लेख अपेक्षित है।
- लेखों में शामिल छाया-चित्र तथा आँकड़ों से संबंधित आरेख स्पष्ट होने चाहिए।
- अनुदित लेखों की प्रामाणिकता अवश्य सुनिश्चित करें। अनुवाद में सहायता हेतु संस्थान राजभाषा प्रकोष्ठ से संपर्क कर सकते हैं।
- प्रकाशन के लिए किसी भी लेखक को किसी प्रकार का मानदेय नहीं दिया जाएगा।
- अंतस में उन सभी प्रकार के विचारों का स्वागत होगा जो संस्थान परिसर में रहने वाले अथवा काम करने वाले लोगों का प्रतिनिधित्व करते हैं किन्तु किसी भी प्रकार के राजनीतिक विचारों को प्रोत्साहित नहीं किया जाएगा।
- अंतस में प्रकाशित रचनाओं में निहित विचारों के लिए संपादक मंडल अथवा राजभाषा प्रकोष्ठ उत्तरदायी नहीं होगा और इसके लिए पूरी की पूरी जिम्मेदारी स्वयं लेखक की ही होगी।
- रचनाएँ अंतस के अनवरत दो अंकों में प्रकाशित न होने की स्थिति में संबंधित रचनाकार राजभाषा प्रकोष्ठ में श्रीमती सुनीता सिंह से जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।
- प्रयुक्त भाषा सरल, स्पष्ट एवं सुवाच्य हिंदी भाषा हो।

स-आभार
संपादक मंडल

संरक्षक
प्रोफेसर अभय करंदीकर
निदेशक

निर्देशन
प्रोफेसर मणीन्द्र अग्रवाल
उपनिदेशक

परामर्शदाता
श्री कृष्ण कुमार तिवारी
कुलसचिव

मुख्य संपादक
प्रोफेसर कांतेश बालानी

संपादक
डॉ. वेदप्रकाश सिंह

संपादन सहयोग
प्रोफेसर अरुण कुमार शर्मा
प्रोफेसर शिखा दीक्षित
डॉ. अर्क वर्मा
श्री विष्णु प्रसाद गुप्ता

अभिकल्प (Design)
सुनीता सिंह

अनुवाद
श्री जगदीश प्रसाद
श्री भारत देशमुख

छायाचित्र
श्री रवि शुक्ल
श्री गिरीश पंत

विशेष-सहयोग
प्रस्तुत अंक के सभी रचनाकार
समस्त संस्थान कर्मी
एवं परिवार
विद्यार्थी साहित्य सभा

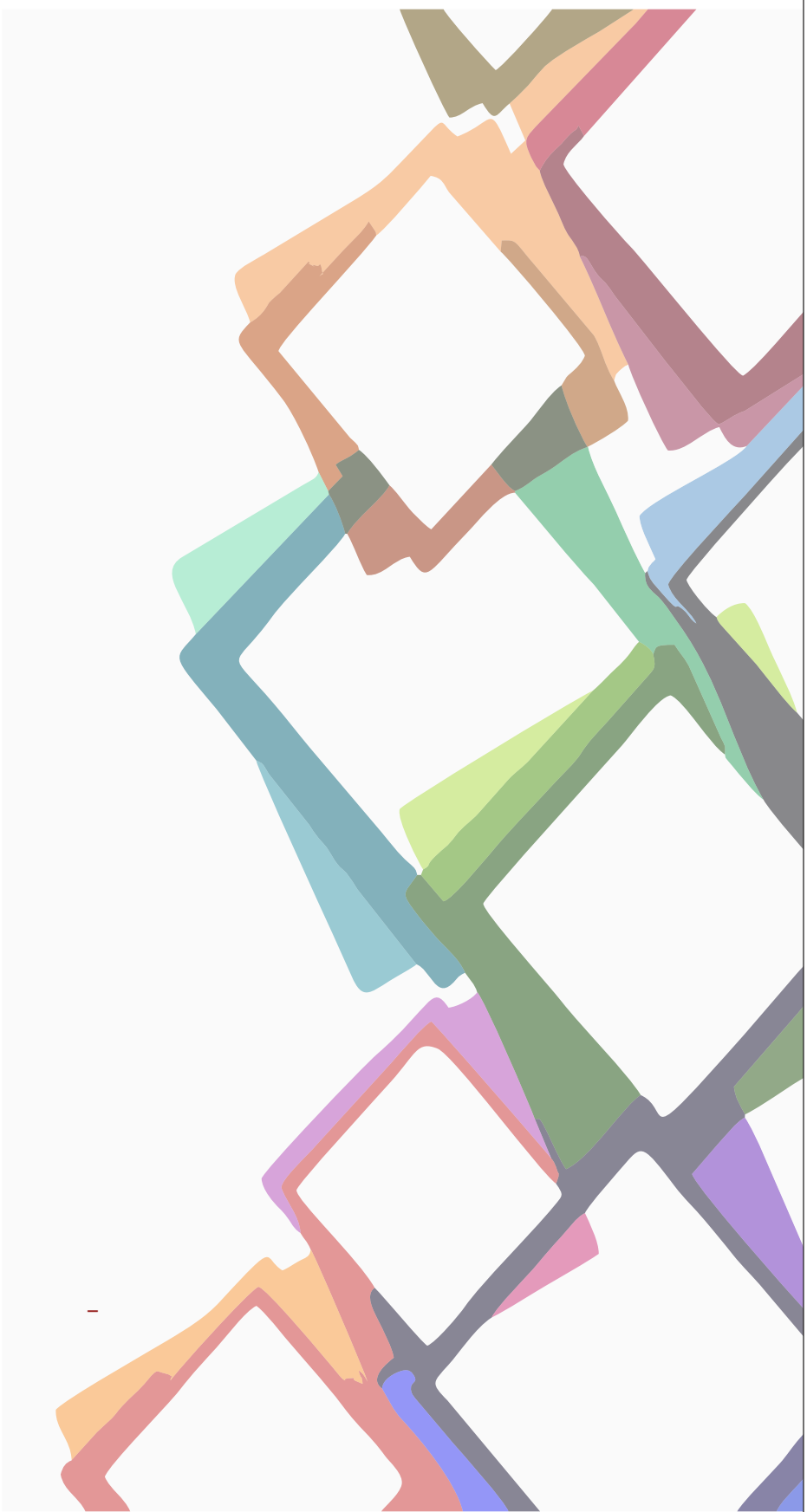

संकेतक

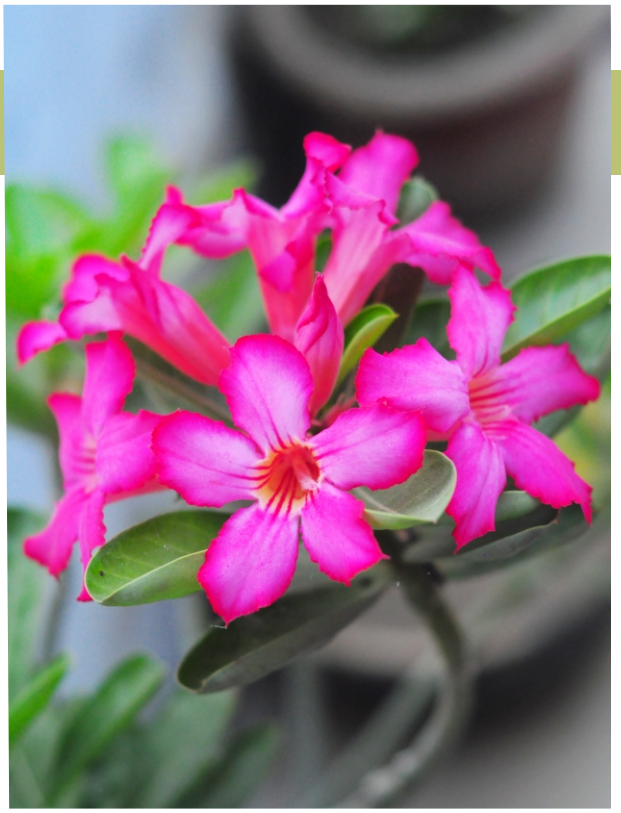

शुभेच्छा

निदेशक 3

उपनिदेशक की दृष्टि में 4

सम्पादकीय 5

कुलसचिव का संदेश 6

गुरुदक्षिणा

डॉ महेश गुप्ता 7

रूबरू

प्रोफेसर एस पी महरोत्रा 10

साहित्य-यात्रा

सहज प्रवृत्ति का धनी नहीं (कविता) 14

भारतीय तकनीकी संस्थान के झूठे-सच्चे अनुभव (लेख) 15

सांस्कृतिक विविधता के संदर्भ में भारतीयता के मायने (लेख) 20

भारतीय संस्कृति और लोक चित्रांकन कला (लेख) 22

फिर भी खुश हूँ (कविता) 24

पारस-द गोल्डन टच (रिपोर्ट) 25

खूबसूरत मुलाकात (कविता) 27

अचल सत्य (कविता) 27

दोहे 28

भारतीय सांस्कृतिक विविधता (कविता) 29

कहानियाँ कुछ सच जैसी (लेख) 30

बादल (कविता) 31

समय की बयार (कविता) 33

1857 का स्वातंत्र्य समर (लेख) 34

छायाचित्र

परिसर की गतिविधियाँ 32

भाषा-विमर्श

उर्दू भाषा 42

रेखाचित्र 46

विरासत

भाव या मनोविकार (निबन्ध) 44

बालबत्तीसी

नाराज बगुला माँ (लघुकथा) 48

तकनीकी लेख

क्या रडार की पकड़ से बचा जा सकता है ? (लेख) 37

कार्यालयीन टिप्पणियाँ

प्रिय पाठकों ,

विश्व के सभी देशों के नागरिकों के मन में भारतवर्ष का अलौकिक इतिहास, सप्तवर्णी साहित्यिक, वैज्ञानिक, सामाजिक एवं कलात्मक अभिरुचियाँ, विविध भाषाएं व विभिन्न धार्मिक एवं सांस्कृतिक प्रभावों से परिचालित जीवन-शैलियाँ सदैव गवेषणात्मक दिलचस्पी का केन्द्र-बिन्दु रही हैं। अंतस पत्रिका के इस पंद्रहवें अंक का केन्द्रीय विषय-वस्तु सांस्कृतिक वैविध्य प्रथमदृष्टया पूरे भारत को अन्तरिक्ष से देखने जैसी विहंगम दृष्टि का भान करवाता है।

मुझे प्रसन्नता है कि अंतस के संपादक मण्डल ने अपने इस अंक के लिए इस विराट विषय को चुना और अंतस के सक्रिय व गंभीर रचनाकारों ने इस बहुआयामी विषय पर अपनी सहभागिता को सुनिश्चित किया।

मेरा सभी परिसरवासियों, अंतस के नियमित पाठकों और संस्थान के समस्त शिक्षकों, विद्यार्थियों, अधिकारियों और कर्मचारियों को व्यक्तिगत सुझाव है कि किसी भी साहित्यिक अवधारणा का हिस्सा बनना सुखद अनुभूति प्रदान करता है। अत: आप सभी लोग अंतस पत्रिका से अपना जुड़ाव कायम रखें और रुचिपूर्वक इसमें अपना योगदान देते रहें।

आप सभी को नववर्ष एवं गणतंत्र दिवस की बधाई!

धन्यवाद

अभय करंदीकर

अभय करंदीकर
निदेशक
धन्यवाद

उपनिदेशक की दृष्टि में | शुभेच्छा

प्रिय मित्रों,

आप सभी को गंणतंत्र दिवस की बधाई !

अंतस का यह नवीन अंक एक बार फिर आपके लिए एक नये विषय को चुनकर लाया है। इस अंक की विषय वस्तु है सांस्कृतिक वैविध्य। मित्रों! भारतवर्ष सांस्कृतिक विविधता से ओत-प्रोत है। उत्तर भारत में एक कहावत प्रचलित है कि 'कोस-कोस पर पानी बदले, चार कोस पर बानी। यद्यपि आश्चर्यजनक है, परंतु सच है, इसी प्रकार यदि हम अपने सम्पूर्ण देश का विहंगावलोकन करें तो पाते हैं कि कश्मीर से कन्याकुमारी तक, त्रिपुरा से कच्छ तक अनेक भाषायें, जातियाँ, धर्म, प्राचीन व लौकिक सांस्कृतिक परम्पराएँ आज 21वीं सदी में भी जन-जीवन को प्रभावित करती हैं परंतु हम अपने राष्ट्र को और राष्ट्रीय गौरव को सर्वोच्च स्थान देते हैं। ये सारे सांस्कृतिक प्रतिमान बड़ी ही खूबसूरती से भारत की राष्ट्रीय अस्मिता से एकाकार होकर न केवल हमें अपने सामाजिक सरोकारों वाले उत्तरदायित्वों के निर्वहन के प्रति सजग करते हैं वरन् विभिन्नता में एकता का पाथेय बन अन्य देशों से इतर भारत को एक अलग पहचान दिलाते हैं।

वस्तुतः हमारी सांस्कृतिक विविधता एक वृहद् गुलदस्ते जैसी है जिसमें पुष्पवाटिका के सभी फूलों को यथोचित स्थान दिया गया है और उस गुलदस्ते की सबसे मजबूत कड़ी है हमारी राष्ट्रीय अस्मिता जो हम सभी को एक सूत्र में पिरोकर रखती है।

प्रसन्नता होती है जब प्रत्येक राष्ट्रीय पर्व पर संस्थान के सभी सुधी पाठकों, रचनाकारों के सहयोग से ''अंतस'' एक नए विषय-वस्तु के साथ एक नए कलेवर में आप सभी के हाथों और संवेदनाओं को स्पर्श करती है। मुझे आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि आपका सहयोग और प्यार संस्थान की इस गृह पत्रिका को सदैव मिलता रहेगा।

पत्रिका के संपादक मण्डल, सभी रचनाकारों व सहयोगियों को पत्रिका के पंद्रहवें अंक के सफल प्रकाशन पर बहुत-बहुत बधाई।
धन्यवाद!

मणीन्द्र अग्रवाल
उपनिदेशक

संपादकीय

अंतस का यह अंक भारत के सांस्कृतिक वैविध्य को समर्पित है। भारत भूमि पर अगर एक नजर डाली जाये तो इसके क्षेत्र-क्षेत्र का भिन्न खान-पान, रहन-सहन इसकी नृत्यकला, वेशभूषा, स्थानीय कला एवं भाषा यहाँ तक कि इसका पानी और स्थानीय जीवन, सबके सब इसकी अप्रतिम सुन्दरता के पर्याय लगते हैं। विविधता में हमारी एकता वैसे भी हमेशा हमारी सबसे बड़ी शक्ति रही है। उसी तरह जैसे छोटी-बड़ी अंगुलियाँ मिलकर एक शक्तिशाली मुट्ठी बन जाती है।

डॉ अर्क वर्मा एक ओर सांस्कृतिक विविधता में भारतीयता का आधार उसकी जैविक पृष्ठभूमि, परिवेश एवं पारिस्थितिक अनुभवों को बताते हैं तो साथ-साथ सही राह चुनने के स्वभाव को स्व के व्यक्तित्व निर्माण में उसका भागीदार भी बताते हैं। उनके अनुसार विविधता के इस संगम को निखारने के लिए जरूरी है कि विभिन्नता पूर्ण इन सारे आयामों को सहज स्वीकारा जाए ताकि देश में एकता और सहिष्णुता बनी रहे। डॉ रूपम मिश्रा जी ने भी बड़ी सुन्दरता से भारतीय संस्कृति की लोक-चित्रांकन कला का वर्णन किया है। वो दर्शाती हैं कि किस तरह स्थानीय कला भारत की सांस्कृतिक विरासत को उजागर करती है, कैसे लोक-चित्रण कहानियों का रूप ले लेते हैं, और किस भाँति तकनीक एवं कौशल अपनी छाप छोड़ जाते है। उन्होंने इसे जीवन दर्पण को रंगमय करने के साथ साथ जीवन में प्रवाहित प्राण का प्रतीक भी बताया है। डॉ. ऋत्विज भौमिक जी का 'पारस' भी अनुपम कला को उजागर करता है और कृतियों के माध्यम धारणाओ एवं शिल्प की गहनता को दर्शाता है।

बाल-बत्तीसी में नाराज़ बगुला माँ की व्यथा से उत्पन्न क्रोध और उस पर संयम एवं बुद्धिमता से स्वयं को संभालना असली विजय के रूप में दर्शाया गया है। डॉ अंजना पोद्दार जी की रचना भी व्यक्तित्व के आयाम को दर्शाती हैं एवं विपरीत परिस्थितियों में अलग-अलग विभागों में संतुलन बनाए-रखकर सकारात्मक कर्म करने का पाठ पढ़ाती है। भारतीय संस्कृति विभिन्न कवियों द्वारा रचित पर विविध कविताएँ एक सुन्दर चित्रण अंकित कर हमें हमारी पहचान समझाती हैं, और हमें हमारी धरोहर पर गर्व महसूस कराती हैं।

प्रो शर्मा जी का लेख, "भारतीय तकनीकी संस्थान के झूठे-सच्चे अनुभव" भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान कानपुर के संग उनके विगत 38 वर्षों के रिश्ते की गूढ़ता प्रत्यक्ष प्रमाण प्रस्तुत करते है। प्रो महरोत्रा का साक्षात्कार यह यकीन दिलाता है कि भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान कानपुर उच्च कोटि की शिक्षा प्रदान करता है और इसमें पुनः विश्व स्तर पर सर्वोच्च पायदान प्राप्त करने की क्षमता है।

प्रो वैभव श्रीवास्तव जी का रडार-पारदर्शी कपड़े पर वैज्ञानिक अनुसंधान, भारतीय रक्षा विभाग को दो कदम आगे कर देता है। इस शोध में प्रो अनंता रामकृष्ण जी, प्रो जे रामकुमार जी, और प्रो वैभव श्रीवास्तव जी ने मिलकर काम किया है। इस ईज़ाद से स्थल- एवं वायु-सेना की आक्रमक क्षमता को काफी मदद मिलने की संभावना है।

इस कड़ी में समर-विनायक दामोदर सावरकर जी की जीवनी प्रस्तुत की गई है, जिन्होने 1857 के स्वातंत्र्य विद्रोह को सैनिक-विद्रोह न मानते हुए उसे जन -विद्रोह के रूप में सबके समक्ष प्रस्तुत किया है। मूल स्रोतों एवं साक्ष्यों पर संजोयी गयी उनकी पुस्तक का प्रकाशन एक चुनौती से कम न था, और इस ग्रन्थ का आरम्भ से अपने रचयिता तक लौटने का सफर बेहद रोमांचकारी तथा विस्मित कर देने वाला रहा। विरासत श्रेणी में श्री आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी बड़ी सरलता से मानव जीवन का अंतर-द्वंद्व प्रस्तुत करते हैं एवं क्रोध, भय और लोभ जैसे मनोविकारों से परे होकर अंदरूनी शक्ति, शांति एवं प्रेम से रहने की सलाह देते हैं। डॉ अमरनाथ का रेखाचित्र, जो किसी घटना अथवा व्यक्ति को देखने के लिए एक दृष्टिकोण प्रदान करता है, स्वतः कटाक्ष से सौंदर्य तक की बात संक्षिप्त रूप मे कह जाता है। साथ ही रेखाचित्र, कहानी और निबंध के बीच की कमी को भी पूरा करता प्रतीत होता है।

जिस तरह अलग अलग रंग मिलकर एक सुन्दर इंद्रधनुष बनाते हैं, उसी तरह भारतीय संस्कृति अलग-अलग धर्म, प्रांत, रंग-रूप, वेश-भूषा, खान-पान, और रहन-सहन को संजोए स्वयं में आकर्षक एवं जीवंत संस्कृति का उदाहरण देती है। वस्तुतः इतनी विविधता के बीच दूसरों के विचारों के प्रति आदर-भाव रखना ही भारत की समृद्ध संस्कृति की पहचान है।

कांतेश बालानी

डॉ कांतेश बालानी
मुख्य सम्पादक

कुलसचिव का संदेश

नये वर्ष में संस्थान की गृह पत्रिका 'अंतस' के 15वें अंक का लोकार्पण एक सुखद अनुभूति करा रहा है। इस अंक की केन्द्रीय विषयवस्तु ''भारतीय सांस्कृतिक वैविध्य'' एक चिर परिचित विषय है। हम सभी जानते हैं कि हमारा देश विविधता में एकता का एक अनूठा उदाहरण है, जहां विभिन्न धर्म, सम्प्रदाय, जाति, भाषा-भाषी एवं मान्यताओं के व्यक्ति आपस में विविध होने के उपरान्त भी सौहार्द्रपूर्ण एवं शान्तिपूर्ण ढ़ंग से रहते हैं, और समय-समय पर अपनी मान्यताओं एवं रीति-रिवाजों के अनुसार मिल जुल कर विभिन्न सांस्कृतिक कार्यक्रमों तथा त्योहारों इत्यादि का आयोजन कुछ इस प्रकार से करते हैं जिसमें अन्य आस्था, मान्यताओं एवं धर्मों के अनुयायी भी कुटुम्बशः सम्मिलित होकर इन आयोजनों का आनन्द उठा सकें। इस प्रकार का विविधतापूर्ण रहन-सहन विश्व में शायद ही कहीं और देखने को मिलेगा।

उदाहरणार्थ यदि अपने प्रदेश में हाल ही में आयोजित किये जाने वाले ''कुम्भ मेले'' की चर्चा करें तो यह भारत की सांस्कृतिक वैविध्यता का ही नहीं बल्कि विश्व भर में एक स्थान पर विभिन्न धर्मों, सम्प्रदायों एवं मान्यताओं को मानने वाले अनुयायियों का सबसे बड़ा जन-समूह है, जहां पर देश के विभिन्न भागों के ही नहीं अपितु अनेक देशों से आने वाले पर्यटक भी इस महान आयोजन में सम्मिलित होने में गौरवान्वित महसूस करते हैं। कुम्भ पर्व सदैव बिना किसी भेद के हमारी संस्कृति की श्रेष्ठता प्रदर्शित करता रहा है। यहां अमीर-गरीब, व्यापारी-किसान, अधिकारी-कर्मचारी, नेता, जनता चाहे जो हो, स्त्री या पुरूष किसी भी जाति-धर्म के हों, सभी प्रयाग की त्रिवेणी में डुबकी लगा सकते हैं। यहां के दिव्य स्नान की लालसा लिए भिन्न प्रकार के साधु-सन्त, महात्मा विद्वान एवं विदेशियों के दर्शन मात्र से ही कुम्भ की कल्पना साकार होने लगती है। यूनेस्को ने कुम्भ को ''मानवता की अमूर्त सांस्कृतिक विरासत'' की सूची में रखा है। सिर्फ इस प्रकार के मेले ही नहीं बल्कि हमारे देश के लगभग हर क्षेत्र में सांस्कृतिक वैविध्य दृष्टिगोचर होता है, चाहे वह किन्हीं आयोजनों में हो अथवा दिन प्रतिदिन के सामान्य रहन-सहन में।

हम सभी को इस बात से गौरवान्वित होना चाहिए कि हम एक ऐसे देश के निवासी हैं जहां सांस्कृतिक वैविध्यता पुरातन काल से चलकर आज तक पुष्पित एवं पल्लवित हो रही है। हमारे संस्थान के परिवेश में भी समय-समय पर सांस्कृतिक वैविध्यता की अनेकों झलकियां देखने को मिलती हैं। मेरी ऐसी अभिलाषा है कि हमारे देश की सांस्कृतिक वैविध्यता अक्षुष्ण बनी रहे।

अन्त में, मैं सभी रचनाकारों को अंतस पत्रिका के सफल संपादन एवं प्रकाशन के लिए बहुत-बहुत साधुवाद ज्ञापित करता हूं।

नव वर्ष एवं गणतन्त्र दिवस की हार्दिक शुभकामनाओं के साथ बहुत-बहुत धन्यवाद!

कृष्ण कुमार तिवारी
कुलसचिव

आज से हजारों वर्ष पूर्व जब मनुष्य पृथ्वी पर अपने को जीवित रखने के लिए संघर्ष करता रहा होगा, तब किसी ने नहीं सोचा होगा कि आज वही मनुष्य अपनी संस्कृति एवं सभ्यता के चरमोत्कर्ष पर काबिज होगा। मनुष्य की विकास यात्रा में न जाने कितने उतार-चढ़ाव आये, कितनी क्रांतियाँ हुईं, हमारे लिए इसका अनुमान लगा पाना शायद कठिन होगा। लेकिन इन सब के बीच मनुष्य ने अपने संघर्ष के दिनों में अपनी खोजों एवं आविष्कारों के आधार पर एक नई अवधारणा को जन्म दिया, जिसे शनैः शनैः 'ज्ञान' के रूप में जाना जाने लगा। इसके बाद उसने हर पक्ष की जीवंतता के लिए ज्ञान का विकास किया। कालान्तर में ज्ञान के प्रचार-प्रसार की व्यवस्था का जिम्मा शिक्षा शब्द ने ले लिया और एक दूसरे के पर्याय बन गये। आज भी इन्हें इसी रूप में पोषित किया जा रहा है। सभ्यता की विकास-यात्रा में औपचारिक शिक्षा केन्द्रों के साथ-साथ तकनीकी ज्ञान के क्षेत्र में हमारे देश में विभिन्न संस्थानों की स्थापना हुई। इन संस्थानों के विद्यार्थी आज भी उसी गुरु-शिष्य परंपरा का निर्वहन कर रहे हैं जो प्राचीनकाल से चली आ रही है। गुरु-शिष्य परंपरा के परिप्रेक्ष्य में भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान कानपुर का उल्लेख करना हमारा सौभाग्य है। पिछले सात दशकों से देश एवं समाज को हर रूप में सही दिशा प्रदान करने वाले शिष्यों के निर्माण में संस्थान की अहम भूमिका रही है। संस्थान के हजारों पूर्व-छात्र सभी के लिए प्रेरणा स्रोत हैं और विशेष रूप से वर्तमान छात्रों के लिए तो वे बहुत ही उपयोगी कार्य कर रहे हैं।

अंतस के नियमित स्तंभ 'गुरुदक्षिणा' के माध्यम से संस्थान के पूर्व-छात्रों को स्नेह देते हुए, इस बार हम यह अंक अपने पूर्व-छात्र एवं प्रतिष्ठित उद्यमी डॉ महेश गुप्ता को समर्पित कर रहे हैं। गुरु से प्राप्त की गई शिक्षा एवं ज्ञान का प्रचार-प्रसार व उसका सही उपयोग कर जनकल्याण में लगाना यह गुरुदक्षिणा का सत्यार्थ है जिसे केन्ट आर ओ सिस्टम लिमिटेड (Kent RO Systems Ltd-) के संस्थापक अध्यक्ष डॉ महेश गुप्ता ने कर दिखाया है। संस्थान का परम सौभाग्य है कि डॉ गुप्ता यहाँ के पूर्व छात्र हैं। तो, आइए डॉ गुप्ता की संघर्षमयी यात्रा के प्रत्यक्षदर्शी बनें तथा उनके जीवन के हर पक्ष से रूबरू होने का प्रयास करें।

डॉ महेश गुप्ता का जन्म एक सामान्य परिवार में हुआ था। आपकी आरंभिक शिक्षा डी सी आर्य स्कूल से हुई। आप बचपन से ही मेधावी छात्र रहे तथा कक्षा में सदैव अव्वल स्थान पाते रहे । डॉ गुप्ता

बचपन की याद करते हुए बड़े निश्छल भाव से कहते हैं कि मैं स्कूल में कभी भी पढ़ाकू छात्र के रूप में नहीं रहा जिसके कारण सदैव माता-पिता से डाँट पड़ती रही। यह स्वीकारोक्ति उनके सरल स्वभाव को दर्शाती है किन्तु उनका यह बड़प्पन हमें यह सोचने के लिए मजबूर कर देता है कि आज जो इमारत इतनी मजबूत है, उसकी कैसी नींव रही होगी। डॉ गुप्ता ने स्कूली शिक्षा समाप्त होने के बाद आईआईटी कानपुर के यांत्रिक अभियांत्रिक विभाग में बी टेक पाठ्यक्रम में प्रवेश लिया। आपने स्कूल से आईआईटी कानपुर के सफ़र के बारे में बताते हुए कई सारी चीजों के संबंध में बातें की। वे इस बात से इत्तेफाक नहीं रखते हैं कि आज की तुलना में उनके समय में उच्च संस्थानों में प्रवेश के लिए प्रतिस्पर्धा का अभाव था। वे मानते हैं कि आज जो स्थिति है वह पहले भी थी, अंतर केवल इतना है कि उस समय बच्चों को कोचिंग क्लास के भरोसे नहीं रहना पड़ता था। उनके जैसे छात्र कक्षा नवमी या दसवीं से इसकी तैयारी में लग जाते थे।

डॉ गुप्ता आईआईटी कानपुर में एक छात्र के रूप में बिताये गये अपने दिनों को याद करके रोमांचित हो जाते हैं। आईआईटी कानपुर से बी टेक करने के बाद डॉ गुप्ता ने परा-स्नातक की पढ़ाई पूरी करने के लिए भारतीय पेट्रोलियम संस्थान देहरादून में प्रवेश लिया और पूरी तन्मयता के साथ पढ़ाई पूरी की।

औपचारिक शिक्षा पूरी होने के बाद डॉ महेश गुप्ता ने 1978 में भारतीय तेल निगम में बतौर उप प्रबंधक (तकनीकी सेवाएं) का पद ग्रहण किया और वहाँ 11 वर्ष तक सेवारत रहे। आपने 1988 में इस पद से त्याग-पत्र दे दिया। इसके बाद आपने एस एस इंजीनियरिंग नाम से स्वयं का व्यवसाय आरंभ किया। चूँकि डॉ गुप्ता को तेल संरक्षण की दिशा में कार्य करने की इच्छा थी अतएव उन्होंने अपनी फर्म में ऑयल मीटर बनाने का काम शुरु किया और सफल भी हुए। आपके द्वारा स्थापित एस एस इंजीनियरिंग कंपनी में आज भी उत्पादन हो रहा है। डॉ गुप्ता बताते हैं कि इस कंपनी के संचालन के दौरान ही वाटर फिल्टर और प्यूरीफायर के निर्माण एवं उसके उत्पादन की नींव रखी गई जिसे 1999 में भारत के पहले घरेलू आर ओ वॉटर प्यूरीफायर के रूप में लांच किया गया। इसका उत्पादन करने वाली कंपनी का नाम रखा गया- केन्ट आर ओ सिस्टम लिमिटेड। आपके संकल्प को साकार करते हुए इस कंपनी ने आपका नाम न केवल भारत में अपितु पूरे विश्व में स्थापित किया।

वर्तमान में आर ओ वॉटर प्यूरीफायर के क्षेत्र में इस कंपनी का मार्केट शेयर 40% है। यह सर्वविदित है कि अशुद्ध जल के कारण 70% बीमारियाँ होती हैं। इस चुनौती को स्वीकार करते हुए डॉ महेश गुप्ता ने आर ओ मिनरल की खोज की और आज इस तकनीक से विश्व भर के करोड़ों लोगों को फायदा पहुँच रहा है। इस तकनीक की मदद से जल जनित बीमारियों से लोगों का बचाव हो रहा है। जल शुद्धिकरण उद्योग के क्षेत्र में एक विशिष्ट पहचान बनाने के कारण डॉ गुप्ता को भारत के Pure Water Man के रूप में जाना जाता है। गौरतलब है कि आपके इस उपक्रम में आपकी धर्मपत्नी श्रीमती सुनीता गुप्ता तथा आपके पुत्र श्री वरूण एवं पुत्री सुश्री सुरभी का भी विशेष योगदान रहा है। आप तीनों ने कंधे-से-कंधा मिलाकर डॉ महेश गुप्ता का साथ दिया है।

'संकल्प करो, विकल्प मत ढूँढ़ों' जैसे मूलमंत्र के साथ कार्य करने वाले डॉ महेश गुप्ता के कुशल प्रबंधन, नीतिगत निर्णयों तथा सामाजिक सरोकार से जुड़े कार्यों को चहुँ ओर सराहा जा रहा है। ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों के निवासियों तक शुद्ध जल पहुँचाने के आपके उपक्रम को मान्यता प्रदान करते हुए श्री श्री विश्वविद्यालय ओड़िसा ने आपको मानद उपाधि से सम्मानित किया है। इसके अलावा देश-विदेश के मीडिया ने भी डॉ गुप्ता के योगदान एवं नवाचार की प्रंशसा की है। आपकी उद्यमशीलता से प्रभावित होकर देश और विदेश के अनेकानेक संगठनों ने आपको सम्मानित किया है। इस कड़ी में भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान कानपुर ने 2013 में आपको प्रतिष्ठित पूर्व-छात्र पुरस्कार से सम्मानित किया था। उद्योग एवं सामाजिक क्षेत्र में उत्कृष्ट कार्य करने के लिए आपको इस पुरस्कार से नवाजा गया था। श्री गुप्ता को एशिया के सबसे अग्रणी उद्यमी के रूप में चुनने के साथ-साथ प्रतिष्ठित ET NOW Leaders of Tomorrow Award से भी सम्मानित किया जा चुका है ।

अपनी सफलता का जिक्र करते हुए डॉ महेश गुप्ता बताते हैं कि मैं अपने कार्य को अपनी पूजा मानता हूँ तथा पूरी तन्मयता और लगन के साथ अपने कार्य को पूरा करता हूँ। महान संत कवि कबीर दास की वाणी 'काल करे सो आज कर, आज करे सो अब' को मूर्त रूप देने वाले श्री गुप्ता किसी काम को कल के भरोसे नहीं छोड़ते हैं चाहे उन्हें इसके लिए दिन-रात काम क्यों न करना पड़े। बकौल श्री गुप्ता चूँकि आम से खास उपभोक्ता उनकी कंपनी के सबसे बड़े स्टॉकहोल्डर है, अतएव वे उनकी समस्याओं से रूबरू होते रहते हैं और उनका समाधान प्रस्तुत करने का प्रयास करते हैं।

डॉ महेश गुप्ता देश के प्रतिष्ठित औद्योगिक निकायों जैसे- ASSOCHAM, CII, PHD चैम्बर ऑफ कामर्स से जुड़े रहे हैं। आप PHD चैम्बर ऑफ कामर्स के अध्यक्ष भी रहे हैं। आपने अपनी कार्यकुशलता और प्रबंधन क्षमता के बल पर सरकार एवं प्रशासनिक अधिकारियों से वार्ता करके तथा उनके साथ समन्वय बनाकर चैम्बर ऑफ कामर्स में क्रान्तिकारी बदलाव कराया है। सरकार ने आपके विचारों को अपनी नीतियों के अनुकूल मानते हुए उन्हें अपने नीति-निर्धारण में स्थान दिया है।

डॉ महेश गुप्ता का समाज से गहरा नाता रहा है। आपने स्वयं के प्रयास से देश में कई सामाजिक कार्यों का बीड़ा उठाया है। भारत के राष्ट्रपति द्वारा स्वच्छ भारत अभियान के एम्बेसडर नियुक्त होने के बाद आपने स्वच्छता की दिशा में अपनी प्रतिबद्धता का प्रदर्शन करते हुए 8 पिछड़े गाँवों को गोद लिया था। आपकी कंपनी ने आर्ट ऑफ लिविंग की ग्रामीण विंग की मदद से 1100 वाटर प्यूरीफायर का वितरण किया तथा 225 शौचालयों का निर्माण किया। इसके अलावा आपके प्रयास से विभिन्न कार्यशालाओं का आयोजन किया जाता रहा है जिसमें स्थानीय लोगों को स्वच्छता एवं स्वास्थ्य के प्रति जागरूक किया जाता है।

डॉ गुप्ता ने अन्य छात्रों की भाँति इतनी ऊँचाईयों को छूने के बावजूद मातृ संस्थान-भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान कानपुर के प्रति अपनी श्रद्धा को कम नहीं होने दिया। संस्थान की विकास-यात्रा को अधिक-से-अधिक गति मिले ऐसी कामना के साथ डॉ गुप्ता ने गुरुदक्षिणा के रूप में संस्थान को अंशदान देकर सदियों से चली आ रही गुरु-शिष्य परंपरा को जीवित रखा है । आपने संस्थान के छात्रों, पूर्वछात्रों, अनुसंधानकर्ताओं तथा संकाय-सदस्यों में उद्यमिता की भावना को प्रोत्साहित करने तथा उन्हें इस क्षेत्र में आगे बढ़ाने के उद्देश्य से KENT Entrepreneurship and Innovation Chair की स्थापना की है। डॉ गुप्ता ने इस Chair की निरन्तरता को बनाये रखने तथा संस्थान में इनोवेटिव इको सिस्टम के निर्माण के लिए यथेष्ट धनराशि उपलब्ध कराई है। आपके प्रयास से नवाचार एवं उद्यमिता के क्षेत्र में अनुसंधान को प्रोत्साहन मिलेगा तथा संस्थान के छात्रों को देश-दुनिया के उद्यमियों, अनुसंधानकर्ताओं, शिक्षाविदों, एजेन्सियों आदि से जुड़ने का अवसर मिलेगा।

भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान कानपुर को निःसंदेह अपने पूर्वछात्र डॉ महेश गुप्ता पर गर्व है कि उन्होंने अपनी प्रतिभा, कर्तव्यनिष्ठा एवं लगन के बल पर उद्यमिता तथा सामाजिक सरोकार के क्षेत्र में न केवल अपना नाम रोशन किया है अपितु संस्थान को भी गौरावान्वित किया है। संस्थान परिवार डॉ गुप्ता के दीर्घायु होने की कामना करता है और अपेक्षा करता है कि अपने अनुभवों से युवा पीढ़ी का सदैव मार्गदर्शन करते रहेगें।

संकलन- राजभाषा प्रकोष्ठ
भा.प्रौ.सं.कानपुर

गुरु पारस को अंतरो, जानत हैं सब संत।
वह लोहा कंचन करे, ये करि लेय महंत।।
गुरु और पारस पत्थर के अंतर को विद्वान लोग भली-भाँति जानते हैं। पारस तो लोहे को ही सोना बनाता है, लेकिन गुरु तो शिष्य को अपने जैसा महान और गुणी बना देता है।

संत कबीर

बुलंद इरादों वाले तथा ध्येय के प्रति समर्पित व्यक्ति को समाज आर्दश मानकर उनके कार्यों का अनुकरण करने का प्रयास करता है। अपने नियत कार्यों से दूसरों के लिए प्रेरणा बनने वाले भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान कानपुर के पूर्व प्राध्यापक प्रो. एस पी मेहरोत्रा का जीवन भी कुछ ऐसा ही रहा है । छात्र के रूप में अपनी शैक्षिक पारी शुरु करने वाले प्रो. मेहरोत्रा ने संस्थान के पदार्थ विज्ञान एवं अभियांत्रिकी विभाग में प्राध्यापक के रूप में अपनी सेवा दी है और लंबे समय तक संस्थान परिसर में उनकी उपस्थिति की आहट सुनाई देती रही है । प्रो. मेहरोत्रा के उदारवादी मन ने ही उन्हें इस बात की प्रेरणा दी कि वे संस्थान की जीवन-गाथा को एक आकार दें और हमें The Fourth IIT, The Saga of IIT Kanpur नामक पुस्तक में उनका एवं इनके साथियों का प्रयास देखने को मिलता है। पिछले दिनों हमारी अंतस की टीम को सरल एवं मिलनसार व्यक्तित्व के धनी प्रो. एस पी मेहरोत्रा जी से मुलाकात करने का मौका मिला और टीम की सदस्य श्रीमती सुनीता सिंह ने बातों ही बातों में उनसे उनके जीवन के बारे में चर्चा की।

प्रश्न - कृपया अपने आरम्भिक जीवन पर प्रकाश डालें जन्म स्थान, बचपन स्कूल, शिक्षा-दीक्षा एवं उच्च शिक्षा?

उत्तर- मेरा जन्म उत्तराखण्ड के एक छोटे से कस्बे काशीपुर में हुआ था। मैंने इंटरमीडिएट तक की पढ़ाई हिन्दी माध्यम से काशीपुर से ही की। इंटरमीडिएट के बाद भाग्यवश मैं पहले प्रयास में ही जेईई में सेलेक्ट हो गया और मैंने वर्ष 1963 में आईआईटी कानपुर में बी टेक प्रोग्राम में दाखिला ले लिया। मैंने 14 जुलाई 1963 में आईआईटी कानपुर में बी टेक स्टूडेन्ट के रूप में खुद को रजिस्टर कराया था। उसके बाद 30 जून 2012 तक आईआईटी कानपुर से मेरा संबंध लगातार बना रहा। पहले बी टेक, एम टेक फिर पीएच डी। डिग्री एवार्ड होने के एक महीने पहले मैंने यहीं लेक्चरर के पद पर ज्वाइन किया और 1984 में मैं प्रोफेसर हो गया। तब से रिटायरमेन्ट (30 जून 2012) तक मैं इस संस्थान से जुड़ा रहा। बीच में 7 वर्ष तक मैं डेप्युटेशन पर सीएसआईआर की एक लैब एन एम एल जमशेदपुर का डायरेक्टर भी रहा। जिसके बाद 2009 में पुन: आईआईटी कानपुर आ गया और 2012 में मैं सेवानिवृत्त हुआ।

प्रश्न - आपकी जन्मतिथि क्या है? अपने परिवार के बारे में भी कुछ बताइये?

उत्तर - मेरा जन्म 26 अप्रैल 1947 को हुआ था। हम तीन भाई और दो बहन थे। दुर्भाग्यवश अब हम दो भाई एवं दो बहन ही रह गये हैं। मेरे पिताजी काशीपुर एवं नैनीताल में एडवोकेट थे। उनका 56-57 वर्ष की उम्र में ही देहान्त हो गया था। उस समय बीटेक, एम टेक पूर्ण हो जाने के बाद मैं पी एचडी करने के लिए कोलम्बिया यूनिवर्सिटी जाने की तैयारी कर रहा था लेकिन मेरे प्रस्थान के 10 दिन पहले ही उनका देहान्त हो गया। तब अपने परिवार की देख-भाल के लिए मैंने कोलम्बिया यूनिवर्सिटी न जाकर आईआईटी कानपुर से ही पी एचडी की डिग्री ली। मेरी शादी दिसम्बर 1975 में हुई। मेरी पत्नी का नाम अर्चना मेहरोत्रा है जो लखनऊ की रहने वाली हैं। हमारी एक बेटी है जिसका नाम सोनम है। उसका जन्म इसी कैम्पस में हुआ, यहीं से उसने पढ़ाई की और 2002 में उसकी शादी हुयी। वह लगभग 13 वर्ष यू एस ए में रही तथा वहीं से पीएच डी किया। 2012 में वह अपने परिवार के साथ इण्डिया वापस आयी। वह तीन वर्ष आईआईएसईआर पुणे में रही, उसके बाद से मुम्बई में है।

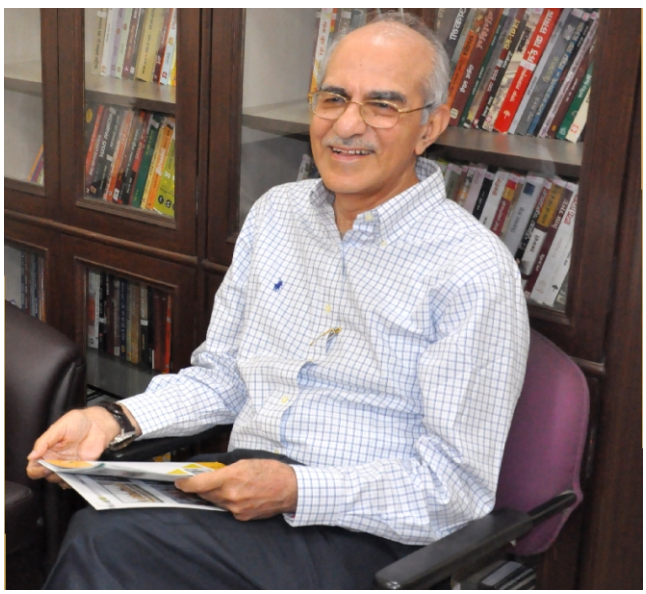

प्रश्न - विज्ञान एवं अभियांत्रिकी विषय के प्रति आपकी रुचि कब और कैसे जाग्रत हुई?

उत्तर - उस समय का एक ट्रेण्ड था कि जो भी मेधावी छात्र समझे जाते थे वे साइंस स्ट्रीम में जाते थे। सौभाग्यवश मैं अपने स्कूल में शुरू से ही फर्स्ट रैंकर रहा इसलिए परिवार में शुरू से ही यह धारणा बन गई थी कि मैं साइंस साइड में ही जाऊँगा। उस समय मुझे आईआईटी के बारे में कुछ भी पता नहीं था। मेरा आईआईटी आना तो जैसे चमत्कार ही था। 1963 में आईआईटी के फॉर्म भरे जा रहे थे। तब तक आईआईटी के बारे में मुझे कोई खास जानकारी नहीं थी बस इतना पता था कि एक अच्छी यूनीवर्सिटी है जहां लोग बी टेक करने जाते थे तथा जिसका नाम बी एच यू है और जहाँ इंटरमीडिएट की परफारमेंस के आधार पर एडमीशन होता है। मुझे यह भी मालूम था कि इंटरमीडिएट में अच्छे मार्क्स आ जाएंगे तो बी एच यू में तो एडमीशन जरूर से मिल जाएगा। फॉर्म भरकर जमा करने की आखिरी तिथि के केवल दो दिन पहले मेरे एक करीबी मित्र प्रभात गुप्ता जो मेरा बैचमेट था, ने सहसा मुझसे पूछा कि मैंने आईआईटी

का फॉर्म भरा है कि नहीं? जिसके जवाब में मैंने कहा, नहीं, मुझे तो पता ही नहीं है कि आई आई टी क्या होता है? तब उसने कहा कि पहले फॉर्म भर दो उसके बाद पता कर लेना। कॉलेज से फिर मैं उसके घर गया और उसकी माता जी से पोस्टल ऑर्डर के पैसे लेकर फॉर्म भरकर उसे पोस्ट कर दिया। उन दिनों जेईई कोचिंग की कोई कल्चर नहीं थी। मेरे घर काशीपुर के पास निकटतम सेंटर आगरा और लखनऊ थे। उस समय मेरे भाई आगरा से एमबीबीएस कर रहे थे इसलिए मैंने आगरा सेंटर ही चुना और बिना किसी तैयारी के जेईई में एपीयर हो गया। सौभाग्य से मेरी अच्छी रैंक आ गई। तब मुझे न तो आईआईटी के बारे में कोई अंदाजा था न इंजीनियरिंग की ब्रान्च के बारे में जानकारी थी। मुझे यह तक नहीं पता था कि क्या करना है, कैसे करना है और किस आईआईटी को चुनना है? तब मेरे चचेरे भाई ने मुझे समझाया कि एनाउन्स हुआ है कि आईआईटी कानपुर अमेरिका के सहयोग से बन रहा है, इसलिए इसी की च्वाइस दो। मैंने फिर यही किया।

उसी साल भारत सरकार ने बोकारो स्टील प्लांट को लगाये जाने की भी घोषणा की थी और इसे लगाने का समझौता यूएसए के साथ हुआ था। जबकि भिलाई एवं अन्य स्टील प्लान्ट सोवियत रूस के सहयोग से लग रहे थे। चूँकि बोकारो प्लान्ट का प्रारम्भिक समझौता यूएसए के साथ हो चुका है और आईआईटी कानपुर भी यूएसए के सहयोग से चल रहा था, अत: मुझे जॉब मिलने में निश्चय ही आसानी रहेगी, इस निर्णय पर पहुँचने में मुझे वक्त नहीं लगा। मेरी इस सोच के सटीक कारण स्वयं में प्रत्यक्ष थे। हालाँकि मेरी जो रैंक आई थी उसके आधार पर मुझे इलेक्ट्रिकल ब्रांच भी मिल सकती थी। मैकेनिकल ब्रांच उन दिनों एक नम्बर पर मानी जाती थी। इस तरह मैं मैकेनिकल ब्रांच का अवसर खो रहा था किन्तु मेरी सोच में जाब का अमेरिकन लिंक बस चुका था, इसलिए मैंने मेटलर्जी ब्रांच को ही चुना।

प्रश्न – आपने उस जमाने में बी टेक ज्वाइन किया था इसलिए आपने तो सब कुछ देखा है जैसे स्टूडेन्ट्स की लाइफ, फैकल्टी की लाइफ, आदि-आदि। उस समय इंजीनियरिंग इंस्टीट्यूट भी बहुत कम हुआ करते थे हालाँकि अब तो बाढ़ आ गई है तो इस बदलते हुए परिवेश में क्या आईआईटी को अभी टीचिंग पर ध्यान देना चाहिए या रिसर्च पर ध्यान देना चाहिए?

उत्तर – आईआईटी को रिसर्च पर तो ध्यान देना ही चाहिए जो वह दे भी रहा हैं। रिसर्च कल्चर इधर आईआईटीज में बढ़ा भी है। ये मैं अपने अनुभव से कह रहा हूँ। मेरा मानना है कि अगर कोई इंस्टीट्यूशन किसी भी क्षेत्र में अच्छा काम कर रहा है तो उसे उसको छोड़ने की जरूरत नहीं है। जरूरी नहीं है कि रिसर्च करने के लिए हमें बी टेक छोड़ देना चाहिए। आईआईटी का जो नाम हुआ है और आईआईटीज को जो ख्याति मिली है, उसमें काफी कुछ योगदान हमारे बी टेक स्टूडेन्ट्स का ही रहा हैं। IITs are now recognized for their undergraduate teaching and education. इसलिए मेरा मानना है कि हमें बी टेक प्रोग्राम तो चलाना ही चाहिए लेकिन इसके साथ हमें रिसर्च पर भी उतना या कहें, उससे ज्यादा फोकस करना चाहिए। ये दोनों Exclusive नहीं बल्कि inclusive हैं। अगर रिसर्च अच्छी होगी तो बी टेक एजूकेशन बढ़ेगी और अच्छे बी टेक के विद्यार्थियों को हम सही ढंग से मोटीवेट कर सकते हैं तो रिसर्च क्वालिटी भी इम्प्रूव होगी।

प्रश्न – सभी आईआईटीज में पदोन्नति, शोधपत्र एवं पीएच.डी. निर्देशन पर आधारित है। लगता है जैसे यही एक मात्र आधार है। आज के युवा संकाय सदस्य अपनी प्रतिभा दिखाने के लिए शिक्षण क्षेत्र में जाने को अब इतना उत्साहित नहीं रहते और इसके बजाय रिसर्च या जॉब के लिए ज्यादा उत्सुक रहते हैं नतीजतन टीचिंग सफर कर रही है। इस बारे में आपका क्या मत है?

उत्तर – हां, ये तो हो रहा है मैं आपकी इस बात से आपसे सहमत हूं परन्तु इसके लिए बहुत हद तक कौन जिम्मेदार है? मैं तो यही कहूँगा कि इसके लिए सीनियर फैकल्टी सदस्य ही जिम्मेदार हैं क्योंकि वे ही तमाम इंस्टीट्यूशनों की फैकल्टी को चयनित करने के लिए चयन समितियों में बैठते है और फैकल्टी प्रमोशन भी करते हैं।

प्रश्न – टीचिंग आईआईटी का अनिवार्य अंग है और ये कहा जाता है कि व्यक्ति को एक अच्छा शिक्षक होना चाहिए अगर आप किसी प्रमोशन के लिये जाते है और वह हाईलाइट नहीं हो पाता तो इसका एक कारण यह भी है कि जो नये लोग आए हैं वे एक दूसरे पर इतना निर्भर हो गए हैं कि उनकी ये सोच बन जाती है टीचिंग क्यों करें यानि टीचिंग से उनका स्वयं का जैसे जुड़ाव ही गायब हो गया है?

उत्तर - हाँ ये हुआ है और इसके लिए कुछ हद तक शायद हमारी सीनियर फैकल्टी ही जिम्मेदार है। मुझे याद है जब मैं स्टूडेन्ट था या शुरूआती दौर में टीचिंग में था तो जूनियर फैकल्टी मेम्बर्स के क्लास में जाते वक्त उनके क्लास में अक्सर काफी सीनियर फैकल्टी (प्रो० एस सुब्बाराव एवं प्रो सी एन आर राव आदि) कैमेस्ट्री एवं मैटीरियल साइंस के क्लास में पीछे बैंच पर बैठे हुए दिखते थे। मेरे साथ ऐसा कई बार हुआ। वे वहाँ इन नये संकाय सदस्यों को इवैलुएट या उनका आकलन करने के लिए नहीं बल्कि ये देखने के लिए बैठते थे कि लेक्चर में क्या हुआ है, लेक्चर कैसा हुआ है? फिर फैकल्टी लाउंज में हम आधे घंटे के लिए अधिकांशतया स्वयं को उनके साथ बैठा पाते थे और वहाँ का डिस्कशन सिर्फ हमारी टीचिंग पर हुआ करता था कि आज हमने जो क्लास लिया उसका अमुक पोर्शन कितने अच्छे ढ़ंग से किया गया। प्रोफेसर सी एन आर राव तथा प्रो एस सुब्बाराव को तो मैंने यह कहते भी सुना था कि अमुक विषय को हमने जिस तरीके से डील किया वो इतना अच्छा था कि शायद मैं भी नहीं कर पाता। इस टॉपिक में हाँ ये थोड़ी सी कमी थी जिसे ऐसे कर लें तो शायद बेटर होगा। हम लोगों की मेन्टरिंग का तब ये तरीका होता था जिसमें सुझाव देने, समझाने की नियत होती थी। कोई भी ट्यूटोरियल प्रॉब्लम होती थीं तो हम लोग बैठकर डिस्कस करते थे कि हम ये प्रॉब्लम दे रहे हैं? इसमें हम क्या कॉन्सेप्ट संप्रेषित कर रहे हैं? इस प्रॉब्लम को कैसे और अच्छा हल कर सकते हैं? ये नहीं कि किसी किताब से कॉपी करके वो प्रॉब्लम दे दिए? हाँ, कुछ प्रॉब्लम सीधी बुक्स की भी होती थी पर बहुत सी प्रॉब्लम ऐसी होती थीं जो फैकल्टी सदस्य स्वयं डिजाइन करते थे। ट्यूटोरियल बुक्स की रैंडम मीटिंग हुआ करती थीं down the line we have lost it फिर समय के साथ लोग व्यस्त होते गए और लोगों के इनवाल्वमेंट बढ़ते गए लेकिन इसका मतलब यह कदापि नहीं है कि हम पढ़ाई की इस संस्कृति या पढ़ाई के उस सहयोगात्मक सिद्धान्त को वापस नहीं ला सकते या उसे नहीं लाना चाहिए। मैं इसे मेन्टरिंग नहीं कहूँगा क्योंकि मेंटरिंग को आज की नयी फैकल्टी शायद उतना पसन्द नहीं करती। सहयोग-सांमजस्य तो वो है कि ये हमें करना है। ठीक है, मैं आज कोर्स इन्स्ट्रक्टर नहीं हूँ, कोर्स इन्स्ट्रक्टर कोई और हो सकता है। दो साल बाद मुझे फिर पढ़ाना हो और मुझे यह सुनिश्चित करना हो कि उसी क्वालिटी का कोर्स ऑफर करना है तो हमें एक दूसरे की मदद लेनी ही होगी।वस्तुतः इसी को हम शीर्षक दे सकते हैं 'कोऑपरेटिव टीचिंग।'

प्रश्न - सर, कृपया भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान में अपने अनुभवों को हमारे साथ साझा करें।

उत्तर - मेरे लिए यहाँ की हर चीज एक स्मृति है कि कैसे उन दिनों संस्थापक निदेशक पी के केलकर फैकल्टी और विद्यार्थियों से लगातार संवाद करते थे? उनका हर संबोधन कितना प्रेरक और प्रेरणादायी होता था? लगता था कि उनका जो विजन है, उसके लिए हम ऐसा क्या करें कि वो पूरा हो। और यही वजह है कि शुरू-शुरू में जो आईआईटी था, उसमें आपसी जुड़ाव की यह भावना थी कि जो कुछ भी संस्थान में हो रहा है, अच्छा हो रहा है जिस पर सबको गर्व होगा। लेकिन यह भावना समय के थोड़े-थोड़े अंतराल पर लुप्त होती गई। जुड़ाव की भावना हालाँकि अभी भी है पर पहले से शायद काफी कम। मुझे याद है कि डॉ मुथाना हमारे उपनिदेशक थे जो रोज तो नहीं पर लगभग हर दूसरी शाम हॉस्टल में जरूर से जाते थे अपने टेनिस रैकेट के साथ, बाकायदा ड्रेस में। टेनिस तो वे आधा घंटे ही खेलते मगर फिर हॉस्टल में जाकर विद्यार्थियों के साथ मिक्सअप होते कि क्या प्राब्लम्स हैं? कभी चाय पर आकर बैठ जाते कि मेस में क्या सर्व हो रहा है? इसी तरह खाने पर आ जाते। कभी सब ओर घूमकर देखने-समझने लग जाते कि क्या कुछ हो रहा है? उनके बारे में आम धारणा थी कि बहुत कठोर प्रशासक हैं। छात्रों में भी अगर कोई शिक्षण से संबंधित मुद्दे हुआ करते तो उन पर भी कोई दया नहीं। वे सभी से पूरी कड़ाई से काम लेते थे लेकिन इन्स्टीट्यूट के सामान्य कार्य समय के बाद हर किसी की समस्याओं पर बिल्कुल गार्जियन(संरक्षक) की भाँति ध्यान देते थे। उनके जैसा यह दोहरा व्यक्तित्व कई अन्य फैकल्टी का भी हुआ करता था जिसका प्रभाव लोगों पर पड़ा, मुझ पर तो निश्चय ही काफी पड़ा।

प्रश्न - सर, भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान में शिक्षण अनुसंधान से जुड़े रहने के बाद एनएमएल जमशेदपुर के निदेशक के रूप में आपका सफर कैसा रहा?

उत्तर - वहाँ मेरा सात साल का सफर बहुत अच्छा रहा। मैंने वहाँ भी बहुत कुछ सीखा और प्रशासन के बारे में मेरे जो भी विचार थे, उनको वहाँ काफी कुछ परखने का भी मौका मिला। मेरा हमेशा से मानना रहा है कि हमें हर व्यक्ति को चाहें वे किसी पद या काम में क्यों न हो, कभी भी निम्न या तुच्छ नहीं समझना चाहिए प्रत्युत हमें उनकी स्थितियों, उनकी अपेक्षाओं आकांक्षांओं को इग्नोर न करते हुए उन पर ध्यान देना चाहिए।कई बार ऐसा होता है कि किसी ने जो काम किया है वो हमारी अपेक्षा के अनुसार नहीं होता। उसकी वह गुणवत्ता नहीं होती जो हम चाहते हैं पर इसका मतलब ये तो नहीं हो जाता कि हम उस व्यक्ति को इसके लिए धिक्कार दें, उसे नकार दें। उसने जो काम जिस विचार के तहत भी किया है, उसे हम भला-बुरा तो कह सकते हैं परन्तु उसके लिये उसे अपमानित करना या नीचा दिखाना मेरे हिसाब से अच्छे प्रशासक की निशानी नहीं है। एनएमएल में मैंने इसी सिद्धान्त पर काम किया। मेरा एक और सिद्धान्त रहा है कि कोई चीज 'मैं' करके नहीं करना चाहिए कि मैं यह कर रहा हूँ मैं

यह करूँगा। यदि मैं को आप हम में बदल दें तो आप स्वयं देखेंगे कि उसका लोगों के व्यवहार में कितना फर्क पड़ता है? इसका प्रत्यक्ष अनुभव मुझे एनएमएल के अपने सात साल के कार्यकाल में भरपूर मिला।

प्रश्न – आपने एक पुस्तक लिखी है The Fourth IIT इस पुस्तक को लिखने की प्रेरणा आपको कैसे मिली? वर्तमान में अपने देश और आईआईटी कानपुर की दिशा एवं ध्येय पर कुछ प्रकाश डालें?

उत्तर – मैं चूँकि आईआईटी से उसके शुरुआती दौर में जुड़ गया था, अत: मेरी शुरू से ही ये आकांक्षा रही कि आईआईटी का एक डाक्यूमेंटेड इतिहास होना चाहिए, उस पर एक किताब होनी चाहिए। यह विचार 1984 में संस्थान की सिल्वर जुबली मनाने के समय और दृढ़ हुआ जिसमें यह विचार प्रोजेक्ट के रूप में आया था कि आईआईटी के 25 साल पर एक पुस्तक लिखी जानी चाहिए। मैं आईआईटी सिल्वर जुबली कमेटी का भी एक सदस्य था। प्रो ए एस पार्शिन उस कमेटी के चेयरमैन थे। उस समय हमने कई बार इस बुक के बारे में चर्चा की लेकिन उस पर कोई खास काम नहीं हो पाया। उसके बाद सन् 1998 में जब मैं डीन ऑफ फैकल्टी था और प्रो अश्विनी कुमार डिप्टी डायरेक्टर थे और हम दोनो ही लोग आईआईटी से काफी समय से जुड़े थे, अत: हमनें पुन: एक प्रयास किया कि हम आईआईटी की एक हिस्ट्री बुक तैयार करें। उसका मुख्य कारण यह भी था कि मैं उस समय डीन ऑफ फैकल्टी था और फैकल्टी से संबंधित डाटा की जानकारी मैं अपने ऑफिस के जरिये जुटा सकता था वहीं संस्थान से संबंधित सूचनाएँ प्रोफेसर अश्विनी कुमार जी एकत्रित कर सकते थे। हमनें प्रयास शुरू कर दिया और काफी जानकारियाँ भी इकट्ठी कर लीं तभी प्रो पद्मनाभन जी ने रिटायर्ड प्रोफेसर एम एस ओबेराय से यह पुस्तक लिखने का अनुरोध किया और उन्हें आश्वस्त किया कि पुस्तक के लिए जरूरी सभी जानकारियाँ एवं सूचनाएं वे उन्हें सुलभ करायेंगे, वे बस किताब लिखें। इस तरह किताब लिखने की शुरुआत फिर से हुई लेकिन टर्म खत्म होने के बाद मैं जमशेदपुर चला गया और इसी के साथ किताब लिखने की सारी एक्टीविटी धरी रह गयी। इस दिशा में अगला प्रयास 2005-06 में प्रोफेसर एस जी धांडे जी ने किया जब वे संस्थान के निदेशक थे। उन्होंने आईआईटीके के 50 सालों का इतिहास लिखने पर जोर दिया और इसके लिए उन्होंने प्रो वी के स्टोक्स को परामर्शदाता बनाया लेकिन किताब लिखे जाने में तब भी ज्यादा प्रगति नहीं हुई। 2009 में जब मैं जमशेदपुर से वापस आया तो प्रो धांडे ने मुझसे इस काम को आगे बढ़ाने का अनुरोध किया। अब मैंने भी इस बारे में पहल करने का निर्णय लिया और निश्चय किया कि इस पुस्तक को हर हाल में पूरा करना है। फिर मेरी यही सर्वोच्च प्राथमिकता बन गयी। मैंने किताब पर तहेदिल से काम करना शुरु किया और अन्तत: 2013 में पुस्तक की पाण्डुलिपि पूर्ण कर डाली। उसके बाद यह पुस्तक प्रकाशित हो गयी।

प्रश्न – सर, आपकी दृष्टि में आईआईटी कानपुर में नकारात्मक एवं सकारात्मक पक्ष क्या हो सकते हैं?

उत्तर – हम केवल सकारात्मक पक्ष की बात करते हैं क्योंकि आईआईटी में किसी समय, कम से कम शुरु के 10 से 12 सालों तक एक विशुद्ध पारिवारिक माहौल था जिसका मूल तत्व यही था कि परिवार में जो कुछ भी हो रहा है, परिवार में हो रहा है और परिवार में केवल अच्छा और अच्छा होना चाहिए। तदनुरूप परिवार के हर सदस्य का योगदान उसी दिशा में हुआ करता था। भारत के अनेकानेक स्थानों में शायद ही कुछ एक ऐसे संस्थान होंगे जहाँ इस तरह की संस्कृति बनी और पनपी हो लेकिन फिर धीरे-धीरे लोगों की प्राथमिकताएं बदलीं, परिस्थितियाँ बदलीं जिससे इसमें कमी आई। परन्तु ऐसी कोई वजह नहीं है कि उस समय की संस्कृति को वापस न लाया जा सके। मेरे विचार में संस्थान की उन्नति के लिए अगर हम उस कल्चर को किसी भाँति भी वापस ले आवें तो हमें किसी और चीज की जरूरत ही नहीं पड़ेगी।

मेरे कहने का आशय यह है कि हमें अपनी मूल सोच में थोड़े परिवर्तन की आवश्यकता है जैसे कि आज हम सोचते हैं कि इंस्टीट्यूट से मुझे क्या मिल रहा है? हर चीज में हिसाब लगाया जा रहा है। अगर हम किसी को जॉब एसाइन करें तो पहला गुणा-भाग यही होता है कि मुझे क्या करना है, मुझे क्या मिलेगा? वहीं पहले हम यह कभी नहीं पूछते थे कि आप यह कर सकते हैं या नहीं? हमारा एक ही उत्तर होता था कि हाँ, हम यह कर लेंगे। क्या परिणाम होगा, कितना समय लगेगा, घर से बाहर जाएंगे, फैमिली को टाइम नहीं दे पाएंगे, ये बात दिमाग में कभी आती ही नहीं थी, यानि कुल मिलाकर हमें अपनी सोच में परिवर्तन करना है।

प्रश्न – सर संस्थान के अनुसंधानकर्ताओं एवं नए संकाय सदस्यों को क्या संदेश देना चाहेंगे?

उत्तर – मेरा संदेश यही है कि आप अपने में जुड़ाव की यह भावना भर लें कि यह संस्थान मेरा है। यदि संस्थान अच्छा करेगा, प्रगति करेगा, प्रतिष्ठा अर्जित करेगा तो मुझे भी लाभ अवश्य मिलेगा।

प्रश्न – सर, आपके सुझाव के अनुसार आईआईटी कानपुर को और अधिक ऊँचाई पर ले जाने के लिए क्या किया जा सकता है ताकि हमारा संस्थान अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर पहुँच सके।

उत्तर – हमारा संस्थान अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर पहले भी था। 20 साल

पहले जब "60 मिनट प्रोग्राम" में एक कार्यक्रम प्रसारित हुआ था। उन दिनों दैन रायदर सीबीएस के सुविख्यात एंकर हुआ करते थे। उनका प्रोग्राम एक घंटा प्रसारित होता था। यह कार्यक्रम "60 मिनट प्रोग्राम" यूएसए में बेहद लोकप्रिय था। उसमें उनका एक पूरा एपिसोड आईआईटीज पर था 'आईआईटीज इण्डिया।' उस प्रोग्राम में उनके ढ़ेर सारे इंटरव्यूज भी सम्मिलित रहते थे। उसमें उन्होंने एक डाटा प्रेजेन्ट किया था जिसमें सबसे अधिक सूचना आईआईटी कानपुर की थी क्योंकि आईआईटी कानपुर से यूएसए सीधे जुड़ा था। उसमें उन्होंने कहा था, IIT B-Tech education is even better than most of the top most Institutions in US including MIT, Berkeley- अर्थात् आईआईटी उसी समय उस स्टेज, उस लेवल पर पहुँच चुका था। उस यश-कीर्ति को कैसे वापस लाया जाए, इसके लिए मेरा एक ही मंत्र है- आप यह सोचकर कि यह मेरा अपना संस्थान है और इसके प्रति मेरा निष्ठापूर्ण समर्पण है तो बाकी सारा कुछ अपने आप अपनी जगह पा लेगा और सभी चीजें स्वयमेव घटित होती चली जाएंगी।

सुनीता सिंह
धन्यवाद! सर

सहज प्रवृति का धनी नहीं

जब प्रश्न हमारे खुद के हों,
और जवाब सभी अनसुलझे हों,
तब हम जवाब तलाशते हैं,
कुछ कही अनकही बातों में।
इंसा हैं हम कठिन बहुत है,
बीती ताहि बिसारन को,
पर उम्र नहीं गुजरती है,
गुजरे बीते जज़्बातों में।
कभी शांत कभी झंझावात होता,
जीवन, अपना है सागर जैसा,
कश्ती लेकर चलने वालों को,
डर कैसा सैलाबों से।
प्रश्न हो या फिर दुविधाएँ,
उठती हैं लहरों के मानिंद,
पर निश्चित है इनका गिरना भी,
तो भ्रम कैसा सुलझाने में।
जीवन में उथल पुथल होती,
लक्षित, रचने को सुन्दरतम्,
श्याम मेघ भी छाते हैं पर,
परिणित होने को सावन में।
पर दृश्यमान नहीं होता आगम,
उद्वेलित जब तक चंचल मन,
जैसे धुँध भरी प्रतिबिम्ब बनेगी,
संग हिलोरों के जल में।
ध्यान रहे एक बंद हुआ तो,
पट चार खुलेंगे तत्क्षण ही,
विश्वास की एक लौ सक्षम है,
मन की हर धुंध मिटाने में।
नियति नहीं निर्देशित रहना,
निर्देशक भी हम ही स्वयं,
निर्देशित-निर्देशक का अंतर,
है विश्वास भरे समर्पण में।

--- 'असीम'
वेदप्रकाश तिवारी
कैम्पस निवासी

अब जब कि यह बात बिलकुल साफ-साफ दिखने लगी है कि चुप रहना ही सच का बोलना है, जो कुछ बोला जा सकता है वह झूठ ही हो सकता है, सुनीताजी, जो हिन्दी प्रकोष्ठ की स्तम्भ हैं, मजबूर कर रही हैं कि कुछ बोलूँ/लिखूँ। वह भी इसलिए कि इस बार अंतस के लिए पर्याप्त लेख नहीं आए और एक समय हम लोगों ने तय किया था कि अंतस 52 पृष्ठों से अधिक स्लिम नहीं होना चाहिए। क्या लिखूँ, क्या टाइप करूँ, मेरा अंतिम अंतस है? बात ऐसी है कि जैसे रामलीला में मारीच के न आ पाने पर रामलीला कमेटी के किसी एक सदस्य से कहा जाय कि थोड़ी देर को तुम ही मारीच बन जाओ। बनना पड़ेगा, जनता तो आ चुकी है।

एक चेतावनीः यहाँ यह पहले ही स्पष्ट कर दूँ कि लेख में लिखी गई सारी बातें सच नहीं हैं, बहुत सी अर्द्ध अथवा पूर्ण रुपेण काल्पनिक हैं और उनकी कल्पना केवल कुछ सामाजिक प्रवृत्तियों पर रोशनी डालने के लिये ही की गई है।

मेरे सभी मित्रों और शत्रुओं के लिए प्रसन्नता की बात है कि गत 31 दिसंबर को मेरी सेवा निवृति हो गयी है। ऐसे बुरे समय पर लोग कहते हैं कि "दीर्घायु की कामना, स्वस्थ रहें और प्रसन्न रहें। आप तो कर्मशील हैं, खाली तो बैठेंगे नहीं। कुछ करते रहिए। आप तो समाज को अभी बहुत कुछ दे सकते हैं। कुछ करते रहोगे तो बने रहोगे।" किन्तु मेरे दृष्टिकोण में सेवा निवृति एक प्रकार से अंतिम स्नान की तैयारी जैसी चीज है, वास्तव में इन वाक्यों में अन्योक्ति अलंकार होता है। सही अर्थ तो एक ही है कि राम नाम ही सत है। यदि दस-पंद्रह वर्ष बाद आऊँगा तो लोग कहेंगे, शर्माजी अभी हैं। संत स्वभाव वाले मनुष्य कहेंगे भाई दिन-रात कपालभाती और अनुलोम-विलोम करते रहते हैं और रात को कुछ खाते नहीं हैं, उसी का फल है; दुष्ट स्वभाव वाले मनुष्य कहेंगे कि इनकी आत्मा फुल पेंशन में पड़ी है, जिस दिन फुल पेंशन हो गई उसी दिन चल देंगे। जाकी रही भावना जैसी।

मेरी सेवा निवृति बहुत शांति से और चुप-चाप हो गयी। बहुत से साथियों को पता भी नहीं चला, नहीं तो और जश्न मनाते, क्योंकि हमारे यहाँ 30 जून तक पुनर्नियुक्ति का प्रावधान है। मनुष्य भी अजीब प्राणी है – उसे एक दिन का जीवन दे दीजिये वह ऐसे योजना बनाने लगेगा और ऐसे महसूस करेगा कि जैसे उसे चंद्र-सूर्य के पश्चात तक जीना मिल गया हो। यहाँ तो एक दिन नहीं निदेशक महोदय ने 30 जून तक का समय बढ़ा दिया है। धन्यवाद, श्रीमानजी।

सेवा निवृति सचमुच बहुत अवसादपूर्ण चीज़ है। सेवा निवृति से पूर्व यदि आपको इसका अनुभव करना हो कि सेवा-निवृति क्या है तो कम से कम एक माह का अवकाश लीजिये और बिना किसी निश्चित कार्य के सारा दिन पत्नी के साथ रह कर बिताइये। पता लग जाएगा। सारा जीवन यदि आपने कार्य को ही पत्नी मानने की भूल की है और वास्तविक पत्नी को नज़रअंदाज़ किया है तो लीजिये अब मज़ा। कहा जाता है कि कर्मों का फल इसी जीवन में मिल जाता है। अब कोई भला आदमी बिना किसी काम के सारा दिन घर में पत्नी के शब्दवेधी बाणों के साथ कैसे जी सकता है, विशेष कर यदि पत्नी को पता हो कि आपके कुछ मित्र कई बड़े शहरों में मकान बना चुके हैं और वे अपनी-अपनी पत्नियों के साथ कितना खुश हैं और उसे कितना खुश रखते हैं। यहाँ न कई-कई मकान हैं और न पत्नी को खुश करने की कला, न ऐसी कोई विशेष इच्छा।

मुझे मई 1980 का वह दिन आज भी याद है जब बंबई से गोरखपुर मेल में कुली से एक सिंगल सीट खरीदकर मैं और प्रो हरीबाबू लगभग 30 घंटे उस एक सीट पर बैठ कर यहाँ साक्षात्कार देने आए थे। अगले दिन साक्षात्कार था। वी एच में आकर लेटे तो पता ही न चला कब सोये, कब उठे। वी एच की बेडशीट अवश्य इतनी काली हो गई थी कि देख कर शर्म आ रही थी। (उन दिनों कोयले की गाड़ी चलती थी।) दोनों का चयन हो गया। सितंबर में मैं यहाँ आ गया। 26 वर्ष का था और प्रायः विद्यार्थी और वरिष्ठ प्राध्यापक मुझे "पी जी" समझते थे जो एक बहुत सम्मानजनक उपाधि नहीं है। प्रायः हाल 4 में खाना खाते थे, पी जी विद्यार्थियों के साथ शोध विषयों और विषयों से बाहर की बातें करते थे, कभी-कभी वह भी जो संकाय सदस्य बनने के बाद नहीं करना चाहिए।

फिर उसके बाद की लंबी कहानी है। कई उपन्यास लिखे जा सकते हैं। मैं सुनीताजी का आदेश तो अवश्य पालन कर रहा हूँ पर बहुत अधिक बोर भी नहीं करना चाहता। अतः संक्षेप में ही अपने अनुभवों को रखने की कोशिश करूंगा। सुख के दिन बहुत थोड़े ही होते हैं। अगले ही माह पिताजी का अंतर्देशीय पत्र मिला कि उन्होने मेरी शादी तय कर दी है। मुझे नहीं लगता था कि मैं किसी को प्रसन्न रख सकता

हूँ। दो-तीन बार सोचा कि कैसे आत्महत्या की जा सकती है और जब हिम्मत नहीं जुटा पाया तो यही सोचना प्रारम्भ कर दिया कि किस प्रकार इस संस्थान में शिक्षण और अध्यापन भी करना है, एक अज्ञात और स्वप्नशील महिला को खुश भी रखना है, और अपने परिवार की सहायता भी करनी है। वे बहुत कष्ट भरे हुए दिन थे। कष्ट में ही सुख है। लंबे-लंबे पत्र लिखने का समय आ गया।

शादी के कारण, आते ही जल्दी से मकान ले लिया। एक मकान खाली था जिसमें कोई भी नहीं जाना चाहता था, साँप के डर से, चोरी के डर से और आग के डर से (कोने का ACES मकान, 3013)। अपने पास कुछ था ही नहीं। मार्क्सवाद की अफीम के कारण दहेज भी नहीं लिया था। बाद में इस दुष्कृत्य के लिए पत्नी से भी डॉट खानी पड़ती थी। चार कमरों का खाली मकान। सबसे पहले कीमती सामानों में दो फोल्डिग पलंग, एक स्टोव और सेकेंड हैंड मेज खरीदे थे। बाद में एक प्रोफेसर साहब जो विदेश जा रहे थे और जिनके पास एक गैर कानूनी सिलेंडर था उनसे गैर कानूनी ढंग से वह सिलेंडर ले लिया। उन दिनों उज्ज्वला योजना नहीं थी। मैं उस मकान में 13 वर्ष रहा। न साँपों की कोई ज़्यादा समस्या आई, न चोरी की, केवल एक बार प्रभात काल में खिड़की खोलते समय साले के हाथ पर एक साँप अवश्य गिर गया था उसने भी काटा नहीं, कूद कर भाग गया। साला यहाँ रहकर इंटर कर रहा था और मेरे पास पत्नी पर रोब जमाने का एक ही जरिया था। बिच्छू बहुत निकलते थे। कुछ सब्जी आदि बोते थे तो पास में दूध का काम करने वाले सुरक्षा गार्ड्स की भैंसे चर जाती थीं। यह एक थोड़ी परेशानी अवश्य थी। बाद में बाड़ा बनबा लिया और फिर मन लगा कर बागवानी भी की। उस मकान में टमाटर, गोभी, पालक और सफ़ेद बैंगन बहुत पैदा होते थे। 1993 में टाइप 4 में आ गए और यह सब बंद हो गया। पत्नी ने समझाया कि उसकी तो इज्जत रख लूँ अपनी तो मेरी कभी इज़्ज़त रही नहीं है, खेती-क्यारी का काम नौकरों से कराया जाता है। आस-पास कोई भी संकाय सदस्य न तो क्यारियों में पानी देता था, न कपड़े सुखाते मिलता था, न सब्जी खरीदने जाता था। पत्नी की मान्यता यह थी कि सब या तो नोबल प्राइज़ के लिए कार्य कर रहे होंगे या बेटे-बेटी को जे ई ई की तैयारी करा रहे होंगे। बाकी सब काम नौकर-नौकरानियों के हैं या पत्नियों के, या एजेन्टों के। (यहाँ कई सारे गुप्ताजी थे जो नगर पालिका, बीमे, ड्राइविंग लाइसेंस, ब्लैक में स्कूटर दिलाने का काम करते थे।) प्रारम्भ के दिनों में इस संस्थान में सामुदायिक जीवन बहुत अच्छा लगता था। पास में अपने विभाग के कई संकाय सदस्य रहते थे। बहुत अच्छा लगता था जब शर्माजी, पटनायक साहब, और अंसारी के परिवार और हम किसी एक के घर एकत्रित हो जाते थे और एक साहू था जो गेट से रिक्शा में रखकर वीडियो ले आता था। एक बार में दो फिल्म देखते थे और मध्यांतर में पौट-लक रहता था। आप इसे स्थानीय स्तर का फिल्मोत्सव कह सकते हैं। आपस में बहुत प्रेम था और हर परिस्थिति में एक दूसरे की सहायता के लिए सब तैयार रहते थे। अधिकारीगण भी थोड़ा अलग थे। मुझे प्रमोशन का पत्र मणि साहब (DOFA) स्वयं घर पर देकर गए थे। हम लोग अधिकारियों का सम्मान करते थे। जब कभी विभागीय हेड किसी के घर आ जाते थे तो माहौल ऐसा बन जाता था कि जैसे कोई शक्तिशाली सामंत आप के घर आकर उपस्थित हो गया हो। हम सबको उसी के घर बुला लिया जाता था। हम ऐसा मानते थे कि हैड जिसके घर अधिक आता हो उसका प्रमोशन पहले होगा। हैड भी सबके घरों में आते थे और सबका प्रमोशन भी साथ हो गया। अब युग बहुत बदल गया है। न वे हैड रहे न वे फैकल्टी।

अवश्य पूर्व जन्म में गरीबों, बीमारों, कोढ़ियों, बामनों को खूब दान दिया होगा या कोई अन्य अच्छे कर्म किए होंगे कि आई आई टी में नौकरी मिली। नौकरी ही नहीं वो सब भी मिला जैसे प्रमोशन, अवार्ड्स, पद, सम्मान, पैसा आदि जिसके लिए मैं शायद उचित पात्र भी नहीं था – और बिना तेल मालिश किए। मैंने सीखा कि यह एक ऐसा संस्थान है कि जहां यदि आप उत्तरदायित्वपूर्ण तरीके से जीने की इच्छा रखते हैं तो संस्थान कल्प वृक्ष की तरह आपको सब कुछ दे देता है। किन्तु यह मेरा अनुभव है। आजकल काफी ऐसे लोगों से भी मिलना होता है जो संस्थान, पदाधिकारियों और साथियों के लिए आलोचनात्मक भाव अधिक ही रखते हैं, विशेष कर एम टी सेक्शन की एक कप चाय हलक से उतारने के बाद। कतिपय विद्वानों के अनुसार, यदि आप कुछ बनना चाहते हो तो ऊपर वाले (ईश्वर को नहीं) को गाली देना शुरू कर दीजिये और उसके लिए मुसीबत खड़ी करिए। शीघ्र ही आप किसी महत्वपूर्ण पद पर होंगे। संस्थान बड़ा हो गया है और उसका भारतीयकरण हो रहा है।

बूढ़े लोगों से अपेक्षा की जाती है कि कुछ कहें कि उन्हें क्या अच्छा लगा, क्या बुरा, अथवा उन्हें क्या कर के सबसे अधिक सुख की प्राप्ति हुई या कष्ट हुआ, ताकि वर्तमान युवा उससे कुछ सीख सकें। तो मुझे सबसे अच्छा लगा जब मैंने COW, Chairman के रूप में मेस

कर्मचारियों की कुछ समस्याओं के निराकरण करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, विशेषकर earned leave encashment की समस्या जिसके लिए वो बीसियों वर्ष से लड़ रहे थे। मुझे अच्छा लगा जे ई ई में प्रो विजय गुप्ता के साथ काम करके जिसमें अन्य अनेक प्रकार के प्रशिक्षण (जैसे सावधानी, समय पर कार्य समाप्त करना, सहयोगियों से सहयोग प्राप्त करना आदि) के साथ हवाई यात्रा करना भी था। गुप्ताजी बहुत कर्मशील और नैतिक रूप से उन्नत थे, उनसे बहुत कुछ सीखने को मिला। (JEE का कार्य मुझे लड़की की शादी जैसा लगता था जिसमें काम लेने के लिए उचित भेंट देने के साथ हाथ भी जोड़ने पड़ते हैं।) मुझे हवाई जहाज से यात्रा करने से बहुत डर लगता था और मैं चाहता था कि उन कामों के लिए किसी और को लगा दूँ किन्तु प्रिंटिंग आदि के सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्यों के लिए ऐसा नहीं किया जा सकता था। गुप्ता जी के कहने पर मुझे उड़ना पड़ा। हाँ यात्राओं से सप्ताहों पहले से मुझे anxiety का दौरा पड़ने लगता था। उड़ान में सर दर्द रहता था और यह पता ही नहीं चलता था कि एयर होस्टेस गोरी है या काली। यह anxiety थी, यह बात मुझे तब पता चली जब मैंने मानसिक स्वास्थ्य पर एक कोर्स विकसित किया और पढ़ाया। जे ई ई एक ऐसा उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य था जिसमें किसी का भी दखल नहीं था, यहाँ तक कि परिणाम प्रकाशित करने से पूर्व निदेशक को दिखाना भी नहीं पड़ता था।

एक और चीज़ जो मुझे अच्छी लगी वह थी संस्थान की शैक्षिक स्वतन्त्रता जो मेरे काफी काम की निकली – यद्यपि मैं समाज शास्त्र का अध्यापक था पर गणित और प्रबंधन विभागों में भी मैं भाग ले सकता था और मैंने वहाँ भी पढ़ाया और शोध निर्देशन का कार्य किया। मुझे Mathematical Modelling Society की Fellowship भी प्राप्त हुई। सच कहूँ तो मुझे अकैडमिक क्षेत्र में एक दर्द हमेशा सालता रहा और वह था समाज शास्त्र में संकाय सदस्य बनना। हमारे समाज में समाज शास्त्र एक बेकार का विषय माना जाता है जिसे लड़कियां तब तक पढ़ती रहती हैं जब तक उनकी शादी नहीं हो जाती। कई बार ट्रेन में लोग पूछते, कहाँ काम करते हो? मेरे यह कहने पर कि आई आई टी में प्रोफेसर हूँ उनकी आंखो में सदैव ही एक प्रशंसा का भाव स्पष्ट दिखता था, परंतु जब कभी कोई पूछ लेता कि क्या पढ़ाते हो और मैं बहुत शरमाता-शरमाता कहता कि समाजशास्त्र, तो वह यह तो नहीं कहता कि कितना घटिया विषय है, पर पूछता क्या आई आई टी में यह भी पढ़ाया जाता है। मान्यता यह थी कि यहाँ सभी नाभकीय वैज्ञानिक गणितज्ञ होते होंगे। व्यक्ति के सामने थोड़ी देर के लिए सम्मान पाने के लिए मैं झूठ नहीं बोल पाता था और फिर डर भी लगता था। मान लो मैं कह दूँ कि नाभकीय भौंतिकी पढ़ाता हूँ और वह उस विषय का जानकार ही निकल जाये। जब कोई पुराना छात्र कहीं मिलता और कहता, सर मैंने आपका कोर्स किया है तो मुझे कोई गौरव नहीं होता। सच पूछिए तो यदि हमारे विद्यार्थियों में सिविल सर्विसेस का मोह न हो तो उन्हें समाज शास्त्र भी कई अन्य अनुपयोगी विषयों जैसा अनुपयोगी विषय ही लगेगा।

आई आई टी जीवन की सर्वाधिक बड़ी कमी है समाज से कट जाना। लगातार यू जी – पी जी पढ़ाते-पढ़ाते हम कब समाज से कट गए पता भी न चला। उसका एक कारण यह भी है कि संबंध पारस्परिकता पर आधारित होते हैं। यहाँ क्योंकि हम दाखिले या नियुक्तियों में किसी की सहायता नहीं कर पाते और अतिरिक्त आमदनी के भी बहुत साधन नहीं हैं जिससे आप समाज में दान दहेज दे सकें, तो आपको समाज त्याग देता है। एक बार एक मित्र ने कहा कि मुझे भतीजे (यानि उसके बेटे) का जे ई ई में चयन कराना है। मैंने कहा कि यहाँ कोई जुगाड़ नहीं चलता। पहले तो वह कहता रहा कि देख ले अरुण तेरा भतीजा भी कुछ बन जाएगा। मेरे झुंझलाट के साथ यह कहने पर कि राणा जी यहाँ निदेशक – उप निदेशक के बच्चों का भी चयन नहीं हो पाता और मेस कर्मचारी के बच्चे का हो जाता है (हमारे JEE के दिनों में ऐसा ही हुआ था) तो उसने कहा: "चचा तुम तो हो घुघ्घू। आजकल क्या और कहाँ नहीं होता। तुम शुरू से ही घुघ्घू हो–बस किताबी कीड़ा। हम करा कर दिखा देंगे। हो सकता हो यह काम नीचे के (क्लेरिकल स्टॉफ के) स्तर से होता हो।" ये बातें तब समझ में आती है जब आप वापस समाज में लौटते हैं। होना यह चाहिए कि आई आई टी जैसी संस्थाओं में कार्य करने वालों को रिटायर नहीं करना चाहिए या फिर रिटायरमेंट के समय चुप-चाप एक पुड़िया देकर कार में बैठा देना चाहिए या शोध पत्रों, पी एच डी गाईडेंस के कुरुक्षेत्र को जीतने के बाद उन्हें पांडवों की तरह हिमालय पर गलने के लिए भेज देना चाहिए।

यहाँ अंतिम ग्रेड देने के लिए प्राध्यापक स्वतंत्र होते हैं। यह भी प्रायः मनोवैज्ञानिक रूप से बहुत कष्टकारी होता है। विद्यार्थी कभी यह नहीं मानते कि वो ग्रेड अर्जित करते हैं। उनके अनुसार उन्हें ग्रेड मिलते हैं और यह पूर्ण रूप से टीचर पर निर्भर करता है कि वह क्या ग्रेड दे। तो परिणाम घोषित होने के बाद जब विद्यार्थी आकर आपके सामने खड़े हो जाते हैं और कहते हैं कि "सर, फक्का लग गया, मेरा रेकॉर्ड

खराब हो गया, अब विदेश में कहीं दाखिला नहीं होगा" या "सर, मुझे A चाहिए, ब्रांच चेंज चाहिए", या "सर, आप सब कुछ कर सकते हैं, मैंने माना कि मैं किसी दिन भी क्लास में नहीं आया पर सर D से डिग्री एक्सटैंड हो जाएगी", आदि आदि तो आपको बहुत ग्लानि होती है। प्राध्यापकों के स्वयं के हित में है कि कुछ moderation होना चाहिए। मुझे याद है कि एक विद्यार्थी का 'F' आ रहा था, वो आकर मिला। 20-25 वर्ष पुरानी बात है। मैंने उससे पूछा सच कहना तुमने क्यों मेहनत नहीं की। उसने कहा – सर सातवें वर्ष में हूँ, जूनियर्स के साथ क्लास में बैठने में शर्म आती है। ड्रग्स की आदत लग गई है, अगले सत्र में भी यही होगा, और होता रहेगा जब तक कोई प्रोफेसर D न दे दें। मैं उन दिनों बुद्ध भगवान के मैत्री, करुणा, प्रेम के सिद्धांत से बहुत प्रभावित था। शायद मैने उसे पास कर दिया होगा या न भी किया हो। जो भी किया होगा उससे ग्लानि तो अवश्य हुई होगी।

कहते हैं कि जीवन में वही होता है जो आप चाहते हैं। बचपन से ही मुझे हिन्दी में कवितायें लिखने का शौक था। इंटर और उसके बाद तो जैसे काव्य का जुनून ही सवार हो गया था। शायद निर्धनता के करेले-अनुभव क्रांति-भाव की नीम-बेल पर चढ़ कर काव्य रूप में प्रस्फुटित हो रहे थे। बन गए प्रोफेसर और वह भी आई आई टी में। मुझे लगा कि सामान्य घरों के बच्चों को केवल और केवल आजीविका के लिए सोचना चाहिए, कविता से रोटी मिल भी सकती है और नहीं भी। निराला और प्रेमचंद की जीवनियाँ पढ़ कर तो कोई भी संवेदनशील प्राणी कवि/लेखक नहीं ही होना चाहेगा किन्तु किसी न किसी रूप में मैं यहाँ भी हिन्दी और सांस्कृतिक कार्यक्रमों से जुड़ा रहा। शुरू के दिनों में तो जैसे अंधों में काना राजा था, बहुत कम ऐसे युवा संकाय सदस्य थे जो हिन्दी से जुड़े हों। अंत में डॉ वी पी सिंह और डॉ धांडे (तब निदेशक) के प्रेमपूर्ण आदेश से हिन्दी प्रकोष्ठ और अंतस से जुड़ना पड़ा। कोई योग्यता न होते हुए भी मुझे प्रथम संपादक चुना गया। पता नहीं मैं प्रकोष्ठ के साथियों में कोई उत्साह भर पाया या नहीं। पर हाँ हिन्दी के लिए कुछ कर पाया, यह सोच कर संतुष्ट हो सकने के कारण हैं। आई आई टी कानपुर में व्यवहार में हिन्दी भाषा ही है। दुकानों की भाषा, सब्जी विक्रेताओं की भाषा, दूधवालों की भाषा, सांस्कृतिक कार्यक्रमों की भाषा, विद्यार्थियों की भाषा (गैर-हिन्दी क्षेत्रों के विद्यार्थियों के बीच संपर्क की भाषा), कर्मचारियों की भाषा, अस्पताल की भाषा। ज्ञान के अंतर्राष्ट्रीय संस्थान होने/बनने के स्वप्न की भाषा अंग्रेज़ी अवश्य है किन्तु कक्षाओं के बाहर विद्यार्थी अपने प्रोफेसरों से हिन्दी में बातें करते दीखते हैं। अंग्रेज़ी के अच्छे ज्ञान न होने के कारण बहुत से विद्यार्थी उतना अच्छा नहीं कर पाते हैं और यह एक सोचनीय विषय है।

टा-टा बाय-बाय का समय आ गया है। टा-टा बाय-बाय हॉल-२, तुम्हारे लिए कितनी बार कलक्टर गंज से देर शाम आटा-दाल और मशाले भरवा कर ट्रक से लाते थे। टा-टा बाय-बाय विभाग जहां कितने ही प्रशासनिक और अकादमिक कार्य संभाले। टा-टा बाय-बाय लैक्चर हाल कॉम्प्लेक्स। टा-टा बाय-बाय तरण ताल। याद आता है कि कैसे अपनी बड़ी लड़की को लेकर तैरना सिखाने ले गया था, उसने ने तो कोई रुचि नहीं दिखाई किन्तु मैंने अवश्य 42-43 की उम्र में स्विमिंग सीख ली। उसके बाद एक भी वर्ष नहीं गया जब मैंने लगभग पूरे सीजन स्विमिंग न की हो। मानों कोई एडिक्शन हो गया हो। विद्यार्थियों को टिप्स देने में बहुत आनंद आता था और गौरव की अनुभूति होती थी। मुझे लगता मैंने एक नया मंत्र ईजाद किया है। मंत्र यह था: "लाश हमेशा तैरती है, भयभीत और हाथ पैर मारने वाले डूब जाते हैं।" तैरना सिखाकर मुझे वह सुख मिलता था जो मैं समाजशास्त्र में नहीं पा रहा था। जब कोई पुराना विद्यार्थी कहीं मिलता और कहता, सर पहचाना, आपने मुझे स्विमिंग सिखायी थी तो मुझे गर्व का अनुभव होता। टा-टा बाय-बाय योग केंद्र। मैं नाटे कद का सामान्य स्वास्थ्य वाला व्यक्ति हूँ किन्तु अपने विद्यार्थी जीवन की अपेक्षा आज अधिक स्वस्थ हूँ - इसका पूर श्रेय योग को जाता है। अपने योग के माध्यम से अपने अनेकों शारीरिक और मानसिक रोग ठीक किए हैं। योग में मेरी रुचि प्रारम्भ से है जो यहाँ आकर बनी रही और अधिक गहरी और विवेकपूर्ण हो गई।

आई आई टी आपको पूरा मौका देता है अपनी प्रतिभा दिखाने और संवारने का। इसके लिए कुछ सुविधाएं भी चाहियें। खुल कर लिखना अमर्यादित हो सकता है पर हमारे जीवन में यहाँ सारी सुविधाएं मिली हैं जो भारतीय ढंग से आपको अनेकों मुश्किलों से मुक्त रखती हैं। शहर के किसी विभाग में कार्य हो घर बैठे हो जाता है। आप सब जानते हैं कैसे। लेकिन शायद शहर की अपेक्षा हमें सुविधा शुल्क अधिक देना पड़ता है। पिछले दिनों समाचार पत्रों ने अवश्य कुछ हमारी तस्वीर धुंधली करने की कोशिश की है, हो सकता प्राईवेट कॉलेजों से पैसा मिल रहा हो। पर हमारी अभी भी समाज में एक इज्ज़त है, पहचान है। हम विशिष्ट लोग हैं।

यहाँ अनेकानेक प्रकार के पेड़-पौधे हैं, पशु-पक्षी हैं। यहाँ के मनुष्यों से नितांत विपरीत स्वभाव वाले। जब खिलते हैं तो सब एक साथ, मुरझाते हैं तो एक साथ। जब एक अमलतास खिलता है तभी दूसरा भी। अंग्रेज़ी गुलाबों के साथ गेंदे भी खुल कर खिलते हैं। एक के खिलने से दूसरा भी खिलता है, एक के मुरझाने से दूसरा भी मुरझाता है। मनुष्यों में अवाड्र्स/रेवाड्र्स की घुन ने सबको परेशान कर रखा है, जिसे मिल गया वो पगला गया, और अन्य सब डिप्रेशन में चले गए। एक बार मेरे एक साथी डीन बन गए और मेरी पत्नी अवसाद में चली गई तो अपने स्वास्थ्य केंद्र जाना पड़ा। डॉक्टर ने कुछ गोलियां दीं और कहा कि तुरंत प्रभाव नहीं होगा, तीन महीने खा लो तब इसका प्रभाव शुरू होगा। तीन महीने में डीन साहब को गालियां मिलने लगीं। इस कारण या दवा के कारण, वो ठीक हो गईं। डॉक्टर ने यह भी बताया कि आई आई टी में सबसे ज्यादा खर्च इसी दवा पर है और महिलाएं तो इसकी बहुत शिकार हैं। दोस्तों के पद पाने का गम तो पुरुषों को भी होता है पर वे फिर भी ही-ही करते रहते हैं।) हाँ तो मैंने देखा कि यहाँ के सभी पेड़-पौधे, पशु-पक्षी परस्परिक संवर्धन में जीना स्वीकार करते हैं। शायद प्रकृति की इसी प्रवृति में वह पुरुष विद्यमान है जो आनंद का अनादि स्रोत है। आप उनके फूलों को देखकर नहीं जान सकते कौन ऊंचा है कौन नीचा, कौन किस बैंड में है, कौन संविदा पर है, कौन नियमित है। पैदा होते हैं, खिलते चले जाते हैं, और एक दिन गिर जाते हैं। जब तक जीवित हैं खिले हुए हैं। मर गए तो बीज बन गए। फिर और खिलेंगे।

सुनीताजी, आपको यह लेख सही लगे तो छाप देना। यह सत्यकथा बिलकुल नहीं है। सच कहा भी नहीं जा सकता। उसे केवल मृत्युशय्या पर ही कहा जा सकता है, वह भी उनके द्वारा जिन्होने जीवन भर बोला हो - सच या झूठ। मैं तो चुप हूँ।

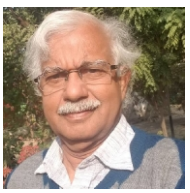

प्रोफेसर अरुण कुमार शर्मा
मानविकी विभाग

सभी पाठकों को मेरा प्रणाम। साथ ही इस विषय पर अंतस के इस अंक को लाने के लिए, संपादक एवं राजभाषा प्रकोष्ठ को भी आभार।

आजकल की समसामयिक चर्चा की बात करें या फिर इतिहास में पसरे हुए सांस्कृतिक और धार्मिक दर्शन की, एक प्रश्न ने मानव समाज को हमेशा ही उद्वेलित किया है। वो प्रश्न यह है कि एक मनुष्य या फिर एक मौलिक व्यक्तित्व के रूप में हमारी पहचान का निर्माण कैसे होता है? इस प्रश्न को लेकर न सिर्फ धर्म और दर्शन -शास्त्र में काफी चिंतन हुआ है बल्कि अनेक शैक्षिक अध्ययन के विषयों में जैसे कि समाजशास्त्र, मनोविज्ञान आदि में भी हुआ है।

अगर साधारण स्तर पर इस विषय के बारे में सोचें और अपने आस -पास देखें तो हम पाएंगे, कि पहचान के कई आधार हो सकते है, वैसे ही जैसे अगर आपको अपना डाक-पता किसी को बताना है तो आप अलग-अलग स्तर की सूचना दे सकते हैं (देश, प्रदेश, नगर, मोहल्ला आदि), बिना इस बात पर निर्भर रहते हुए कि अगला व्यक्ति या डाक कहाँ से आ रही है?

व्यक्तिगत पहचान के विषय में आप अपने नाम से शुरू कर सकते हैं, फिर लिंग, परिवार का परिचय, रहने का स्थान, जाति, धर्म, भाषा, प्रदेश, देश आदि। सोचने की बात यह है कि अगर किसी भी व्यक्ति की पहचान के इतने सारे मौलिक बिंदु हो सकते हैं, तो इनमें से किन बिंदुओं को व्यक्ति अमूमन अपनी पहचान के रूप में उपयोग में लाता है। इसका उत्तर भी सीधा ही है, जब हम किसी विदेशी व्यक्ति से पहली बार मिल रहे होते हैं, तो सबसे पहले शायद अपने देश का ही परिचय देंगे, किसी अन्य भारतीय से मिले तो शायद प्रदेश का, किसी व्यक्ति से जो अपने ही प्रदेश का हो तो अपने शहर का, और ऐसे ही आगे भी जायेंगे।

यह बात जो मैं आपसे कर रहा हूँ, कोई नयी या अनोखी बात नहीं है, बल्कि एक सामान्य सी बात है जो शायद हर बच्चे को पता होगी। मैं तो ऐसा ही मानता हूँ। परन्तु कुछ समय से सम-सामयिक घटनाओं और अनेक टी-वी बहसों को देखकर मैं इस विषय पर दुबारा सोचने लगा हूँ। यह प्रश्न इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि आजकल और शायद आने वाले समय के काफी घटनाक्रम शायद इसी एक प्रश्न पर निर्भर करते हैं। एक तरफ जहाँ मनुष्य हमेशा से अपनी जाति, धर्म, भाषा, देश आदि किन्हीं बिंदुओं पर अपनी पहचान को आधारित कर एक-दूसरे से लड़ता रहा है , वहीं एक नस्ल के तौर पर भी तो मनुष्यों के सामने कई चुनौतियाँ प्रस्तुत हो रहीं हैं, जिन पर सारी मानव जाति को एक होकर सोचना ही होगा। उदाहरण के तौर पर पृथ्वी पर हो रहा जलवायु परिवर्तन जो गंभीर चिंता का विषय बनता जा रहा है, जैसे कि पानी की कमी, प्रदूषण, प्लास्टिक के बढ़ते ढेर आदि। गरीबी-भुखमरी, बेरोज़गारी जैसे सभ्यता- जनित प्रश्न भी अभी कहाँ हल हुए हैं? ऐसे में हमारी प्राथमिकताओं का चयन मुझे अक्सर अचंभित करता है।

खैर, इससे पहले कि मैं विषय से भटक जाऊं, विषय पर वापस आता हूँ।

आपने देखा है कि हमारी व्यक्तिगत पहचान के प्राय: कई बिंदु हो सकते हैं, हाँ यह अवश्य है कि यह निर्णय भी हम तमाम तरह के प्रभावों में फंसकर ही लेते है। इस सन्दर्भ में मनोविज्ञान का एक उदाहरण आपके समक्ष रखता हूँ , गौर फ़रमाईये।

मशहूर जर्मन मनोवैज्ञानिक कोर्ट कोफ्फ्का ने एक सिद्धांत दिया था, जो अंग्रेजी में इस प्रकार है , "The Whole Is Other Than The Sum Of Its Parts" यानि किसी भी सकल वस्तु का अस्तित्व उसके विभिन्न भागों या अंगों से भिन्न होता है। सीधे शब्दों में कहा जाये , तो कोफ्फ्का कहते हैं कि किसी भी चीज़ की समग्र पहचान केवल उसके एकल भागों की पहचान पर निर्भर नहीं करती, बल्कि उनके मिलने पर वह बिल्कुल अलग एक संपूर्ण अस्तित्व की तरह होती है।

व्यक्तिगत पहचान भी मेरे विचार में एक ऐसी ही चीज़ है। हमारी व्यक्तिगत पहचान सिर्फ हमारे मनुष्य होने, किसी लिंग विशेष,परिवार विशेष, जाति, धर्म, भाषा, यहाँ तक कि देश विशेष पर एकाकी तौर पर निर्भर नहीं करती, बल्कि इन सभी के मिले - जुले प्रभाव पर करती है।

अगर आप गहरायी से सोचें तो पहचान या व्यक्तित्व कई स्रोतों से बनता है जैसे कि हमारी जैविक पृष्ठभूमि, पारिवारिक परिवेश, सामाजिक परिस्थितियां और हमारे मौलिक अनुभव आदि। हम सभी अपने जीवन काल में इन सभी अनुभवों से सीखते-प्रभावित होते हुए आगे बढ़ते हैं। और यही हमारे व्यक्तित्व या हमारी पहचान का हिस्सा बनते हैं। इस बात को और बेहतर समझने के लिए आईये कुछ उदाहरण लेते हैं, जो आज शायद इस बात को आज के समय में संदर्भित करने में सहायक होंगे।
इन उदाहरणों में मेरी कोशिश व्यक्तिगत पहचान पर अपनी चर्चा को थोड़ा आगे बढ़ाकर भारतीयता से जोड़ने की है।

यह तथ्य कि भारत दुनिया के उन चंद देशों में से हैं जहाँ अनेक धर्म, संस्कृतियाँ, भाषाएं, रीति-रिवाज़, विचार-व्यवहार आदि स्वतः ही घुल

-मिल कर रहते हैं, हम सबको भली-भांति पता है। भारत के सदियों पुराने इतिहास और उन तमाम अनुभवों में जो इस भू-भाग के हिस्से में आये हैं, कुछ आपको देखने को मिलता है, तो वो यह है कि हमने सभी प्रकार के प्रभावों को आत्मसात किया है, चाहे वो भारतीय भ-ूभाग के अनेक छोटे छोटे राज्यों, उनके आपसी व्यवहार और सांस्कृतिक विनिमय के द्वारा हुए अनुभव हो या फिर कई बार बाह्य आगंतुकों, आक्रमणकारियों आदि के साथ आयी संस्कृतियाँ रही हों। हमारी संस्कृति भी अनेक तरह के प्रभावों का मिला जुला संगम है भले ही जिसके पीछे यही सब वजहें हों। मजेदार बात तो यह है कि इस प्रक्रिया में यह नहीं होता कि कई तरह के रंगों के मिल जाने से किसी एक रंग की पहचान छिप जाती हो या खो जाती हो, बल्कि मेरे विचार से तो वह उल्टे एक बहुरंगी इंद्रधनुष की भांति और भी निखर कर आती है।

भारतीयता की संकल्पना मैं इसी सन्दर्भ में करता हूँ। हमारे भारतीय होने में मुझे ऐसा लगता है जैसे देश के सभी अनुभवों का उसमें काफ़ी योगदान रहा हैं। उदाहरण के तौर पर हम अगर गंगा जमुनी तहज़ीब को लें, तो पाएंगे कि उत्तर प्रदेश के जिन शहरों को हम गंगा-जमुनी तहज़ीब का गढ़ मानते हैं, वहां की बोल-चाल, खान-पान, रीति- रिवाज़ आदि, इन सभी पर इतिहास के पुराने से पुराने प्रभावों से लेकर अब तक के हर तरह के प्रभावों का मिला जुला असर है। ऐसे में यह मान लेना कि हमारी पहचान किसी एक ही प्रकार के सांस्कृतिक, धार्मिक या व्यक्तिगत अनुभव की देन है और बाकी से उसका कोई लेना देना नहीं है, मेरे विचार में सही नहीं होगा। इसी बात को थोड़ा विस्तार से सोचें तो यह बात पूरे भारत पर लागू होती है। देश के विभिन्न हिस्सों में अनेक वर्षों से हर तरह का, हर क्षेत्र का आदान-प्रदान सदैव से चला आ रहा है, चाहे वो यात्राओं के माध्यम से हो या किसी और कारण से, हम सभी की बोली-वाणी, खान-पान, रीति-रिवाज़ यहाँ तक कि आचार-व्यवहार भी, जो एक दूसरे पर अपना असर डालते आये हैं और आगे भी डालते रहेंगे।

इसलिए यह मेरा कहना कदापि अनुचित न होगा कि भारतीयता की कोई एकाकी कल्पना इस देश के सैकड़ों वर्षों के इतिहास और हमारी बहुरंगी संस्कृति से बहुत बड़ी नाइंसाफी होगी। हम इतिहास में जाके उसे बदल नहीं सकते हैं और न ही समय का पहिया पीछे घुमा कर, उन प्रभावों को मिटा सकते हैं। हमारे देश का और हमारा वर्तमान स्वरूप जैसा है, हमें उसे वैसे ही स्वीकार करके आगे बढ़ना होगा। हम अपने देश के इस बहुआयामी चरित्र पर अभिमान करते हैं और हमेशा करते रहेंगे। हमें हर हालत में अपनी भारतीयता के इन विभिन्न आयामों को पहचानना ही होगा और उन्हें स्वीकार भी करना होगा। अन्यथा हम भारतीयता के सही मायनों को नहीं समझ पायेंगे और देश में एकता एवं सहिष्णुता को स्थापित करना, उसे बरकरार रखना मुश्किल होता जायेगा।

तात्पर्य यह है कि भारतीयता की संकल्पना भारत के सांस्कृतिक मूल्यों को ध्यान में रखकर ही की जानी चाहिए। मेरे विचार में यह बहुत ही आवश्यक शिक्षा है जो हमें खुद को, अपने आस-पास के लोगों को और आने वाली पीढ़ी को देनी होगी।

इसके साथ ही मैं इस लेख का अंत करता हूँ। उम्मीद करता हूँ यह अति - सरल कोशिश आपमें से किसी को तो ज़रूर अच्छी लगेगी।

डॉ अर्क वर्मा
मानविकी विभाग

भारत भूमि विभिन्न प्रकार की संस्कृतियों की जननी है। यहाँ की वैविध्यपूर्ण संस्कृतियाँ एक खूबसूरत पुष्प गुच्छ की भाँति है। हमारे पूर्वज ऋषि मुनियों द्वारा निर्धारित नियम जो कि धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, पारिवारिक और वयैक्तिक हुआ करते थे, का पालने करते थे। जिन्हें नैतिक मूल्यों की कसौटी पर समय-समय पर खरा पाया गया जबकि सामाजिक धरातल पर व्यक्ति समूहगत, क्षेत्रीय, भाषाई, जातीय प्रभावों से अछूता न था इसलिए रहन-सहन, खान-पान, पहनावा-ओढ़ावा, बोल-चाल सभी कुछ भिन्न थे, जो वर्तमान में भी है। अनेकानेक भिन्नताओं के होते हुए भी भारत की आत्मा में एक अध्यात्मिक चेतना वास करती है जो लगभग वैदिक काल से प्रारम्भ हुई, यह आध्यात्मिक चेतना ही भारतीय जनों को सांस्कृतिक रूप से बाँधे हुए है।

भारत की एकता, अखण्डता भारतीय संस्कृति के रूप में परिलक्षित होती है जो सामाजिक, राजनैतिक, वैचारिक मतभेदों पर सदैव भारी रही है। हमारी भारतीय एकता ने समय-समय पर विदेशी ताकतों को भी हिला कर रखा जिसे विदेशी ताकतें कूटनीतिक ढ़ंग से आज भी तोड़ने का प्रयास कर रही हैं।

यह बात टी बी मैकाले ने 1835 में कही थी, "मैं भारत में पूर्व से पश्चिम, उत्तर से दक्षिण सभी जगह घूमा लेकिन पूरे भारत में मुझे एक भी भिखारी या चोर नहीं दिखाई दिया। भारत की समृद्धि व उच्च नैतिक मूल्यों को देखते हुए मुझे नहीं लगता कि हम कभी भी भारत पर विजय प्राप्त कर सकते हैं, जब तक कि हम भारत की रीढ़ की हड्डी आध्यात्मिक व सांस्कृतिक शिक्षा व्यवस्था के स्थान पर यह न कर लें कि विदेशी व अंग्रेजी शिक्षा व्यवस्था भारत की शिक्षा व्यवस्था से अधिक महान है।" मैकाले के अनुसार हमारा भारत सांस्कृतिक रूप से समर्थवान था, साथ ही आर्थिक-बौद्धिक रूप से अत्यधिक समर्थ था।

देश की आत्मा गाँवों में ही बसती है। सांस्कृतिक विरासत का संवहन गाँवों में ही होता है शहरी लोग तो उससे प्रभावनत हो प्रचारित-प्रसारित मात्र भले ही कर लें। शहरी आदमी शहर की चकाचौंध में अपने जीवन की गति को तेज करता है और इसी गति को पकड़ने के प्रयास में वह कई चीजें पीछे छोड़ता जाता है जिसमें कुछ हिस्सा संस्कारों का भी होता है।

जैसा कि हम सभी जान रहे हैं कि भारतीय संस्कृति कोई छोटा-मोटा विषय नहीं, एक विस्तृत विषय है जिसके एक-एक पहलू पर मनीषी व्यक्ति मोटी-मोटी किताबें लिखते आ रहे है। इस विषय पर अनेक शोध कार्य भी संपन्न हुए हैं। इसीलिए मैं यहाँ इसके एक पहलू को स्पर्श करने का प्रयास मात्र कर रही हूँ-भारतीय संस्कृति और लोक चित्रांकन कला। भारतीय लोक चित्र कला में चित्र माधुर्य है। ये उल्लास का अक्षय श्रोत है ये साधारण जनमानस की अभिव्यक्ति है। यही कारण है कि इसे पूरे भारत में महत्व मिला है चाहे सुसंस्कृत गाँव हो, जंगल में बसे कबीले हों, घूमन्तू प्रवृत्ति से जुड़े (बंजारे) समुदाय हो यहाँ तक कि शहरी जीवन में बसे लोग भी मांगलिक कार्यों में इसका उपयोग करते हैं। आज ये फैशन में आ गया है। लोकचित्र के उद्भव को सही-सही बताना असम्भव होगा। ये मानव द्वारा उकेरी गई सहज-सरल रेखाएं जो आज सुन्दर अभिकल्पों के रूप में प्रदर्शित होती है, आदिकाल में कन्दराओं में अंकुरित हुईं, जो अक्षरों से भी बहुत पहले जन्मी। ये कहीं सरल, सीधी तो कहीं लयात्मक रूप से रची-गढ़ी जाती है ये भारत के विभिन्न अंचलों में अलग-अलग नामों से जानी पहचानी जाती हैं। जैसे उत्तर प्रदेश में दीवारों पर की गई चित्रकारी को लिखना भूमि के लिए चौक पूरना बोलते है। उत्तर प्रदेश के पहाड़ी जगह में ऐपन बोलते हैं, राजस्थान में माड़ना, गुजरात में साथिया, बिहार में अरिपन, महाराष्ट्र में रंगोली, उड़ीसा में झुन्टी, बंगाल व असम में अल्पना, आन्ध्रप्रदेश में मुग्लू, हिमाचल में लिखनू तो दक्षिण में कोलम नाम से बुलाते हैं। सामूहिक रूप से ये अभिकल्प लोक चित्रण, लोक भित्ति चित्र, लोक चित्र कला के नाम से प्रसिद्ध हैं।

भारत का आम जनमानस जो ग्रामीण है या उससे प्रभावित है, इसी लोक कला को पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित करता आ रहा है। लोक

शब्द के अर्थ और उसके महत्व को डॉ हजारी प्रसाद द्विवेदी जी के अनुसार समझें तो लोक शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम नहीं है बल्कि नगरों व ग्रामों में फैली वह समूची जनता है, जिसके व्यवहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं हैं। ये नगर में परिष्कृत रुचि सम्पन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रुचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमार को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुएं आवश्यक होती हैं, उनको उत्पन्न करते हैं।

लोक चित्रण संभवत तीन प्रमुख कारणों से होता है। मानव जीवन से जुड़े संस्कार (रीति रिवाज), धार्मिक पर्व तथा उत्सव। कुछ लोक चित्रण सजावटी सोच के उद्देश्य से रचे जाते हैं। इन चित्रों में लोगों के सुख-दुख की कथा निहित रहती है लोक कलाकार चित्रकार-दर्शक-पुजारी तीनों होते हैं। इनमें क्षेत्रीय प्रतिद्वंद्विता नहीं, एक पीढ़ी द्वारा दूसरी पीढ़ी को नीचा दिखाने जैसी भावना नहीं। ये चित्र स्वांतः सुखाय की भावना से प्रभावित होते हुए भी सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः की कामना से आलेखित किये जाते है। लोक चित्रण हमारी मूल भावनाओं को सीधे स्पर्श करते हैं। इसमें कलात्मक गुणों के असीम भण्डार छुपे हैं। ये परिष्कृत कलाकारों की जननी है। जहाँ परिष्कृत कला विदेशी आतताइयों से सदा प्रभावित हो अनेक झंझावात सहती रहती है। वहीं लोक चित्रण घर भीतर चुपचाप माधुर्य पूर्ण सृजनात्मक रस लुटाती रहती है। कुछ लोग लोक कला को गँवारू कला या बेढ़ंगी कला कहकर भले ही उपेक्षा करें पर लोक चित्र कला अपने आप में सारगर्भित है। कुछ लोग इसे बीते युग की कला कहते हैं पर आज ये घर भीतर से निकल कर देश के अनेक बाजारों में आ गई है। आज इसकी व्यापारिक स्तर पर अपनी अलग पहचान बन चुकी है जहाँ एक और आधुनिकता ने पाँव पसारे है। वहीं लोक कला गाँव से निकल कर शहर के घर-घर में आ गई और आधुनिकता का पर्याय हो गई।

लोक कला के विषय में श्री शैलेन्द्र नाथ सामन्त के अनुसार लोक कला जन सामान्य विशेष तथा ग्रामीण जन समुदाय की सामूहिक अनुभूति की अभिव्यक्ति है।

डॉ सुधांशु कुमार राय के अनुसार-लोक कला हमारी ज्ञान वृद्धि नहीं करती वरन् हमें प्रसन्न, आह्लादित और विश्रान्तिमय बनाती है लोक रचना में कोई व्यक्तिगत या जातिगत भेद नहीं होता वरन् कलाकार की एक निर्लिप्त भेंट होती है।

लोक कला के यही गुण भाव लोक चित्रण में भी पूर्ण रूपेण विद्यमान रहते है। लोक चित्रण में देवी-देवताओं से जुड़ी कहानियाँ, प्रकृति के अनेक रूप, पशु-पक्षी के अनेक रूप तथा आम जन मानस के किस्से-कहानी आदि विषय होते है। कुछ अभिकल्प तंत्र कला के नजदीक भी होते हैं। प्रत्येक अभिकल्प अपना विशिष्ट महत्व रखता है जैसे स्वास्तिक, चक्राकार रेखाएं, बिन्दु, कोणीय, तिकोनी रेखाएं आदि। इसमें देवी-देवता, सूर्य-चंद्रमा, पुतरा-पुतरी, पशु-पक्षी, वृक्ष-लताएं, फूल-पत्ती, नदी-पहाड़ इत्यादि बनाए जाते है। लोक चित्रण में कहीं दोहरी लाइनें बनाकर छोटी-छोटी रेखाओं से सजाते हैं इस प्रकार की रेखाएं मधुबनी क्षेत्र की मैथिली कला में देखने को मिलती हैं जिसे आज कल मधुबनी कला के नाम से भी जानते है इसी प्रकार इकहरी रेखाओं से तो कहीं गोलाईदार रेखाओं से रूप बनते हैं। वर्ली कला में डमरूदार रूप अधिक बनते हैं अनेक भिन्नताएं चेहरे के अकंन में भी दिखाई देती है कहीं आँख, कान का अभाव होता है तो किसी क्षेत्र में आँख नाक कान के साथ-साथ सुन्दर बाल वस्त्र आभूषण आदि भी रुच-रुच कर चित्रित करते है।

लोक चित्रण में प्रयुक्त रंग घर के आस-पास से ही प्राप्त हो जाते हैं जैसे-खड़िया, रामरज, आलता, हरताल, काजल, पीला सिंदूर, नील, ऐपन, चौरठा, पिसी हरी पत्तियाँ, पत्थर घिस कर उसका चूर्ण आदि। मिट्टी में गाय का गोबर मिलाकर फलक (चित्रांकन हेतु भूमि/दीवार) तैयार की जाती है। हरी दीवार के लिए गाय को हरा चारा अधिक खिलाकर हरेपन के लिए गोबर से लिपाई करते हैं वहीं लालिमा लाने के लिए गेरू का प्रयोग करते हैं। उजली सफेद दीवार के लिए खड़िया

मिलाकर लिपाई की जाती है। रंगों में स्थायित्व तथा चमक लाने के लिए दूध अथवा घी में भी कई रंग घोटे जाते हैं। जैसे काजल, पीला सिंदूर, नील आदि। रंगों के चुनाव में भी विविधता देखी जाती है। कहीं मात्र गेरू-खड़िया का प्रयोग होता है तो कहीं रंग-रंगीले चित्र देखने को मिलते हैं।

लोक चित्रण ने पर्व-उत्सव के समय घर गाँव को सामूहिक रूप से सजा-सँवारकर भारत की सांस्कृतिक विरासत को ऊँचाई की पराकाष्ठा तक पहुँचाने का कार्य किया है। ये मानव की कलात्मक नैसर्गिक ऊर्जा को प्रवाहमान रखती है। अनेक भिन्नताओं के होते हुए भी लोक हित की भावना ही पुरजोर होती है। जिसने पूरे भारत को सांस्कृतिक रूप से बाँध रखा है।

दूसरा पक्ष देखें तो जन मानस को एक दूसरे से जोड़े रखने का कार्य इसका कलात्मक आकर्षण भी है जिसने बाज़ार को जन्म दिया। जिसने देश के कला सर्जक की अनुपम सृजनशीलता को प्रभावित किया और गृहसज्जा के दृष्टिकोण से नयनाभिराम लोक चित्र बनाए जाने लगे। अनेक वस्तुओं को भी लोक अभिकल्पों से सजाया सँवारा जाता है। देश के एक जगह कालोक चित्रण दूसरे स्थान पर आसानी से देखा पाया जा सकता है। इस प्रकार व्यापारिक चहल-कदमी ने भारत को एक सूत्र में बाँध दिया है।

लोक कला के महत्व को समझते हुए भारतीय सांस्कृतिक संस्थान द्वारा लोककला संग्रहालय की स्थापना हुई, जो अनेक प्रकार की गतिविधियों द्वारा देश के दूर-दराज के कलाकारों को नियंत्रित कर कार्यशालाएं, मेले, पुस्तक प्रकाशन, प्रदर्शनी आदि आयोजित करता रहता है साथ ही कलाकारों को सम्मानित भी करता है। मधुबनी कला से जुड़ी स्वर्गीय पद्मश्री महासुंदरी देवी अनेक पुरस्कारों से सम्मानित हुईं। अपने कानपुर में 8 दिसम्बर 2018 को राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर ने देशज कला तथा उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान लखनऊ ने चौक पूरना कला पुस्तक के प्रश्नोपरांत उसका विमोचन डी ए वी कालेज कानपुर में आयोजित किया।

इस प्रकार लोक चित्र कला भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग है। लोक चित्रण के बिना भारतीय संस्कृति अधूरी एवं रंग विहीन है। ये भारतीय लोक जन का दर्पण है जो मानवजीवन को रंगमय कर जीवन में प्राण प्रवाहित करने का कार्य करती है।

डॉ रूपम मिश्रा
शिक्षिका एवं चित्रकार
केन्द्रीय विद्यालय आईआईटी कानपुर

फिर भी खुश हूँ

ना मैं 5 फीट का
ना मै पहलवान
मैं 4 फुट 6 इंच का
साधारण कद काठी
फिर भी खुश हूँ।

ना मैं पुत्र राजनेता का
ना मैं पुत्र किसी धनाढ्य का
मैं साधारण मध्यम परिवार से
फिर भी खुश हूँ।

ना मैं एमआईटी से
ना मैं हार्वर्ड से
मैं हूँ आई आई टी से
फिर भी मैं खुश हूँ।

ना मैं इंग्लैंड से
ना मैं अमेरिका से
मैं हूँ भारतीय
इसीलिए मैं खुश हूँ।

रवि पांडेय,
REO

2016 में एक समूह प्रदर्शन (ग्रुप शो) द्वारा आयोजित "पारस-द गोल्डन टच" अपनी श्रंखला की दूसरी कड़ी थी। यह वस्तुत: मेरा अपना विचार था जिसने इस संस्थान में ज्वाइन करते समय ही मेरे मन में घर कर लिया था। मुझे मानों तभी लगने लगा था कि वैज्ञानिक आवासियों वाले इस सुन्दर परिसर में जैसे कुछ कमी है। और वह यह थी कि यहाँ तमाम तरह के भवन-स्थल होते हुए भी कला चैतन्यता के लिए कुछ भी नहीं था। किसी विकसित राष्ट्र के एक स्तरीय विश्वविद्यालय में कला संरक्षण एवं आधुनिक कला के प्रदर्शन के निमित्त एक समुचित संग्रहालय का होना उसकी अनिवार्य विशिष्टता मानी जाती है लेकिन उसकी बात तो दूर यहाँ तो कला प्रदर्शन हेतु कोई गैलरी तक नहीं है। यही विचार था जिसने धीरे-धीरे पल्लवित होकर खिले पुष्प का आकार लिया। इस प्रदर्शनी के इसी मूल विचार के अनुरूप तब मैंने इसकी रूप रेखा तैयार की और सबसे पहले कलाकारों के चयनित समूह द्वारा बनायी गयी चित्रकारी (ड्राइंग), पेटिंग, मूर्तिकला रेखाचित्रों (ग्राफिक्स) सहित परा आधुनिक कलाकृतियों का इस प्रदर्शनी में प्रदर्शन किया गया।

पारस का शाब्दिक अर्थ होता है-स्पर्श जिसे दूसरे शब्दों में जादुई स्पर्श कहा जा सकता है अर्थात् वह स्पर्श जो वस्तुओं की हमें स्वर्ण की या स्वर्ण सरीखी अनुभूति देता है। दोनों ही भाँति यह अनुभूति से जुड़ी भावनाओं को सबंधित करने से जुड़ा एक विदेशी शब्द है। हम सब जानते हैं कि निर्जीव पदार्थ भी सच्चे कलाकार के स्वर्णिम स्पर्श से अनायास अमरत्व प्राप्त कर लेते हैं और सामान्य सी वस्तुयें मानों कला के दिव्य रूप में परिवर्तित हो जाती हैं। इसी सोच के तहत "पारस द गोल्डन टच" का आयोजन किया गया जिसमें 10 युवा पेशेवर कलाकारों की कृतियों का प्रदर्शन किया गया। इसका मुख्य उद्देश्य यह दर्शाना था कि ललित कला के जरिये किस प्रकार स्वयं, स्वयं के विचारों तथा चतुर्दिक वातावरण को मूर्त रूप दिया जा सकता है।

प्रदर्शनी की पेटिंग, मूर्तियाँ तथा कलाकृतियाँ ऐसी थीं जो रहस्यमय वैचारिक आदर्शों तथा राजनीति आदि का संस्पर्श करती थी। इस क्रम में कलाकारों के चयनित समूह को सीमित रखने हेतु उनके द्वारा व्यवहार में लायी जाने वाली परम्पराओं, प्रथाओं और उनके तरीकों का विश्लेषण किया गया तो उसमें जैसे एक क्रमबद्धता दिखाई दी। ऐसा लगता था कि सभी दसों कलाकार मानों किसी गम्भीर विचारपूर्ण प्रयोग में डूबे हों ताकि सभी सदस्यों की कलाकृतियों के व्यापक प्रदर्शन के बीच उनकी अपनी कृति सबसे अलग एवं विशिष्ट दिखाई दे। विभिन्न संचार माध्यमों में काम करते समय उनमें से हर एक साफ-साफ यह जताता प्रतीत होता था कि बनाई गई कृतियों को आकार दिये जाने, उन्हें औपचारिक रूप से चयनित करने यहाँ तक कि उनको नाम दिये जाने के पीछे उनकी क्या सोच थी। उनसे हुई बातचीत में उनकी कृतियों की विषयवस्तु की जाँच भी शामिल थी जिससे पता चला कि कई कलाकार अपनी कृतियाँ बनाते समय उनसे संबंधित स्थान तथा उनसे जुड़ी परिस्थितियों एवं उनके ताने-बाने के बारे में भी जानकारी करते हैं। ये कलाकृतियाँ देबासीष घोराई की कामुक अमूर्त पेंटिंग से लेकर तन्वी जैन की विलक्षण पेंटिंग एवं टेपेस्ट्री की कृतियों के बीच की धुंधली रेखाओं और प्रोनिता मण्डल की एक बड़ी पारदर्शी एक्रेलिक शीट पर किसी पक्षी की श्रमसाध्य हैचिंग प्रक्रिया को चित्रित करती असाधारण ग्लास पेंटिंग तक फैली हुई थी।

वहीं साधना नास्कर एवं सुदीप विश्वास जैसे प्रशिक्षित पेन्टरों ने कागज पर कुछ बेहद रंगीन अमूर्त पेंटिंग प्रस्तुत की थीं जो दर्शकों का ध्यान बरबस अपनी ओर आकृष्ट कर रही थीं। कोलकाता के सयातन मुखर्जी ने अपनी पानी के रंगों वाली पेंटिंग प्रदर्शित की थी जो प्रकृति की अदम्य छटा दर्शा रही थी। मूलत: डिजाइनर के रूप में प्रशिक्षित सुदेशना सिल और सुनिपा भौमिक, दोनों ने शारीरिक आकृतियों के रंगीन पैचवर्क वाले मिश्रित मीडिया कलाचित्र सजाये थे जो कुल मिलाकर कला का वह आयाम दिखा रहे थे जो उसे उसकी विषयवस्तु की स्थूलता से बचाती थी। बप्पा मांजी ने भारतीय उप महाद्वीप में कला आंदोलन और उसकी विरासत के सृजन से जुड़ी राहत देने वाली मूर्तियाँ प्रदर्शित की थीं तो मूर्तिकार से पेंटर बने अरिंदम घोष ने मूर्तिकला से पेंटिंग तक के प्रयोगों की अपनी यात्रा और खोजों पर उसे केन्द्रित किया था।

कला यद्यपि एक शाश्वत चेतना है किन्तु जमीनी स्तर पर प्रशिक्षित शौकिया कलाकारों की शौकिया कला में निश्चित रूप से फर्क है। ये चुनिंदा कलाकार सारे देश में फैले हुए हैं लेकिन जो डोर उन्हें आपस में जोड़े हुए है, वह उनका पेशेवर प्रशिक्षण तथा कला सृजन हेतु उनका सहज जुनून है। इस स्तर पर पहुँचने के लिए अच्छे प्रशिक्षण और आर्ट कॉलेज की शिक्षा जरूरी होती है जहाँ कलाकारों का यह समूह पूरे उत्साह और लगन से समाज को बदलने के लिए अपनी अनुपम कला (फाइन आर्ट) बिखेरता है। किसी कला प्रदर्शनी के आयोजन की जड़ें चुने गये कलाकारों की क्षमता, उनके प्रयासों और विचारों के प्रति उनकी वास्तविक सोच में निहित होती है और पारस ठीक यही कर रहा है। उसकी यह धारणा उसके इस ठोस विश्वास पर आधारित है कि चुने गये कलाकारों की अपने शिल्प एवं अवधारणाओं के प्रति एक प्रतिबद्धता है जो उनकी कृतियों में झलकती है तथा जो हमारे समर्थन के योग्य है।

इस प्रदर्शनी ने भारत में हो रहे कार्य की समृद्धि और उसकी गहनता का भाव जगाया है साथ ही उसकी विषम प्रवृत्तियों को भी एक सूत्र में जोड़ने की कोशिश की है। मैंने जब यह कार्य आरम्भ किया था तब अधिकांश परिसर समुदाय में कला संग्रह तथा उस पर दृष्टिपात करने के प्रति जैसे कोई विचारधारा ही नहीं थी। दर्शकगण भी फाइन आर्ट के प्रति ऐसी नवीन एवं आधुनिकतावादी दृष्टिकोण से दो-चार होने के बारे में प्रशिक्षित नहीं थे। उनमें से अधिकतर कला को महज सजावट की वस्तु समझते थे न कि कला का वह अद्‌भुत नमूना जिसमें इतिहास को बदलने की शक्ति होती है। कला को समझने और उसका संग्रह करने के लिए वास्तव में किसी आर्ट कॉलेज की शिक्षा नहीं बल्कि प्रदर्शनी में बराबर जाना तथा उसके प्रति अपनी पसन्द को सुनना पर्याप्त होता है। पर मुझे खुशी है कि अब हालात बदल रहे हैं और (संकाय सदस्यों के साथ-साथ) विद्यार्थी भी सही कीमत पर स्वयं का कला संग्रह बनाने के लिए उत्सुक हैं। निश्चय ही उन कलाकारों के लिए यह एक बड़ा प्रोत्साहन है जो केवल अपनी पेंटिंग की बिक्री पर रोजी-रोटी के लिए निर्भर है। मैं आशा करता हूँ कि यह प्रदर्शनी भविष्य में संस्थान परिसर में कलात्मक विनिमय का पूरा वृक्ष बनकर अवश्य ही खड़ी होगी।

डॉ ऋत्विज भौमिक, मानविकी विभाग

चंद अलफ़ाज़

हम कराहने के नई, वो चिल्लाने के नई
कुछ ज़ख्म ऐसे हैं, जो दिखाने के नई।।

एक उम्मीद ने ही फैलाया है सारा फ़रेब,
ना'उम्मीदी कह रही है, वो आने के नई।।

तीरगी पसंद हो चली है , मेरी दुनिया,
यहाँ चरागों पर लिखा है, जलाने के नई।।

इश्क़ होते ही सारे ग़म खत्म हो जाते हैं।
ये सब किताबे नुस्खे हैं, आज़माने के नई।।

बड़ा अजीब है जानी, तुम्हारा ये शहर,
हैं रास्ते कत्लखाने के, मयखाने के नई।।

तुम्हें भी अब बेघर होकर रहना है फ़ैज़ल,
खरीददार के हो अब, कारखाने के नई।।

फ़ैज़ल अंसारी (खाक़सार)
छात्र

खूबसूरत मुलाकात

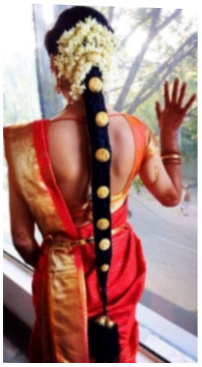

तुम जो मिले हो,
ये अजीब इत्तेफाक है
किसी बेरंग महफ़िल में जैसे,
सतरंगी सौगात है।
सोचता हूँ अब, कि
ये कितना हसीन आगाज़ है

मिला हूँ मैं, या मिले हो तुम,
इक खूबसूरत मुलाकात है।
पल बीते ही कितने,
पिछले अक्टूबर की ही तो बात है
नीली साड़ी में,
वह मनमोहक रूप आज भी याद है।
सोचता हूँ अब,
कि ये कितना प्यारा अहसास है
मिला हूँ मैं, या मिले हो तुम,
इक खूबसूरत मुलाकात है।

चट मँगनी और पट ब्याह,
वहीं से तो शुरुआत है
बाबुल घर की दुलारी,
मेरे घर-अँगना की आवाज़ है।
सोचता हूँ अब,
कि ये कितना न्यारा रिवाज़ है
मिला हूँ मैं, या मिले हो तुम,
इक खूबसूरत मुलाकात है।

बीत गया एक और बसंत,
पर इस बार कुछ खास है
इस सालगिरह पर ये शब्द-पुष्प,
प्रथम मेरा प्रयास है द्य
सोचता हूँ अब, कि आएगा पसंद,
ऐसी मेरी आस है
मिला हूँ मैं, या मिले हो तुम,
इक खूबसूरत मुलाकात है।

सत्येन्द्र
शोध छात्र

अचल सत्य

सब साथ छोड़ गए तो क्या,
सत्य अचल है,
कहो, कहा मैंने कब कि
धर्म मार्ग सरल है।

धनधान्यमणि, अपितु,
हस्तिनापुर की शाह नहीं,
धर्म वंचित रह जाये,
ऐसे स्वर्ग की चाह नहीं।

जो चले गये उनसे
नहीं, कोई मुझे विरक्ति,
साथ हैं जो उनसे भी मुझे
नहीं, कोई आसक्ति,

किन्तु, दुर्गम मार्गों, कटुपरिस्थितियों में
जो साथ चला अमूल्य मित्र वही,
उस मित्र को छोड़ना भी
शचीश! मेरा धर्म नहीं।

रंगरूप, वर्णजाति, वैभव
मित्रता किसी से बाध्य नहीं,
मूक, असहाय, अमनुज तो क्या?
प्रेम निश्छल तो आराध्य वही।

साम, दाम, दंड, भेद,
नीतियाँ सब विफल हुई,
परीक्षक निरुत्तर,
परीक्षा वहीं भंग हुई।

मुस्कुरा देवेंद्र बोले- युधिष्ठिर!
पुत्र पिता के अनुरूप है।
तुम्हारा यह आखिरी मित्र, और कोई नहीं,
स्वयं धर्मराज का स्वरूप है।

डॉ अभिषेक गुप्ता
विधुत अभि. विभाग

पाती

आदरणीय डॉक्टर साहब,
सादर अभिवादन! अंतस 15 अगस्त, 2018, चतुर्दश-अंक प्राप्त कर हार्दिक प्रसन्नता हुई। आभार! आप जिस सलीके और सूझ-बूझ से पत्रिका सजाते और सँवारते हैं, उसकी मिसाल बहुत कम देखने को मिलती है। अंक में निदेशक की कलम-अभय करंदीकर और पद्मविभूषण गोपालदास नीरज जी-श्रद्धांजलि के मध्य, दीक्षान्त समारोह 2018, गुरुदक्षिणा, रूबरू, कविता, अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस 2018 के छाया चित्र, भाषा विमर्श, विरासत, बालबत्तीसी, आलेख और तकनीकी लेख अर्थात् सभी सामग्री पठनीय, ज्ञानवर्धक एवं मनोरंजक तो है ही बल्कि यूँ कहूँ तो अतिशयोक्ति नहीं होगी कि एक से बढ़कर एक हैं। सच-आप हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए अद्वितीय एवं अविस्मरणीय कार्य कर रहे हैं। इसके लिए आपकी और अंतस परिवार की जितनी भी प्रशंसा और सराहना की जाए, कम होगी।
मैं भी आपके इस पुनीत यज्ञ में आहुति हेतु अपने कुछ दोहे दे रहा हूँ। आशा है कि आपके मापदंडों पर खरे उतरेंगे। शेष शुभ। ईश्वर से आपकी और अंतस परिवार की कुशलता एवं पत्रिका की उत्तरोत्तर प्रगति की कामना के साथ-

आपका
डॉ.अंसार कम्बरी

हमारा उद्भव

शुभ शान्तिमय शोभा जहाँ भव बन्धनों को खोलती,
हिल-मिल मृगों से खेल करती सिंहनी थी डोलती।
स्वर्गीय भावों से भरे ऋषि होम करते थे जहाँ,
उन ऋषि गणों से ही हमारा था हुआ उद्भव यहाँ।।

आभार
मैथिलीशरण गुप्त

आभार
डॉ.अंसार कम्बरी

कुछ दोहे

बाल्मीकि के जाप से, निकला ये परिणाम।
श्रद्धा होनी चाहिए, मरा कहो या राम।।

चाहे वो आशीष दें, चाहे मारें बाण।
रघुनन्दन के हाथ से, होता है कल्याण।।

जिसके ऊपर लिख दिया, सिर्फ राम का नाम।
वो पत्थर करने लगे, नौका वाला काम।।

मन के कागज पर अगर, लिख लो सीता राम।
घर बैठे मिल जाएंगे, तुमको चारो धाम।।

संकटमोचन से अगर लेना है कुछ काम।
मंगल है हनुमान का, जपो राम का नाम।।

जिस गुलशन से आये हैं, सबके नबी-रसूल।
मेरे अपने राम हैं, उसी चमन के फूल।।

गूँज रही हो बाँसुरी, झूम रही हो गाय।
फिर तो अपना गाँव भी, वृन्दावन हो जाय़।।

चोरी की हर आदमी करता निन्दा घोर।
दुनिया को भाया मगर, अपना माखन चोर।।

राधा सच्चे प्रेम का, पाया ये ईनाम।
कान्हा से पहले लिया, जग ने तेरा नाम।।

चाहे दुनिया घूम लो, भटको चारों ओर।
भक्ति बिना मिलता नहीं, राधा का चितचोर।।

मेरे घर में कम्बरी, जब से आई गाय।
माता की मानिन्द वो, सबको दूध पिलाय।।

भारतीय सांस्कृतिक विविधता

सांस्कृतिक विविधता ही है भारत की पहचान,

अनेकता में एकता से ही बना देश महान।

भले दो सौ साल हमारा रहा देश गुलाम,

फिर भी सुंदर संस्कृति में अव्वल इसका नाम।

अलग-अलग हैं धर्म , अलग-अलग खानपान,

अलग-अलग है वेषभूषा, अलग भाषा का ज्ञान।

फिर भी मिलकर रहते, आते एक दूजे के काम,

भारतीय संस्कृति है एक समंदर के समान।

साहित्य कला और शिल्प में भी रहा देश का नाम,

नृत्य-संगीत की विविधताएं भी भारत की पहचान।

राजनीति प्रशासन हो या ज्ञान-विज्ञान,

हरेक क्षेत्र में माहिर रहे हैं भारत के विद्वान।

समेकित यह संस्कृति हमारी प्रगति की पहचान

समृद्ध सांस्कृतिक विरासत अपना गौरव अभिमान।

कुशलता से करता है यह सुंदर चरित्र निर्माण,

सुंदर कृत्य आदर्श जीवन है इसका परिणाम।

सांस्कृतिक विविधता ही है भारत की पहचान,

अनेकता में एकता से ही बना देश महान।

प्रियंका रानी दुबे
परिसरवासिनी

उम्र जैसे जैसे बढ़ती है वैसे वैसे मनुष्य के व्यक्तित्व में परिवर्तन आता है। यह प्रकृति का अवश्यम्भावी नियम है। मासूम बचपन, अल्हड़ किशोरावस्था, चंचल जवानी, संजीदा प्रौढ़ावस्था आदि व्यक्तित्व के विभिन्न स्तर हैं जो बढ़ती उम्र के साथ बदलते हैं। फिर भी एक उम्र के लोगों का व्यक्तित्व एक जैसा नहीं होता। वैसे एक जैसा होता तो बड़ा ही उबाऊ हो जाता। अलग होने का कारण है कुछ आनुवांशिकता का असर और कुछ वातावरण या पर्यावरण का असर, ये हम सभी जानते हैं। फिर भी एक ही घर में रहते हुए और एक ही माता पिता के संतान होते हुए भी भाई-भाई के या भाई - बहन के व्यक्तित्व में अंतर क्यों होता है? कुछ तो समय के साथ साथ बस आस-पास के माहौल के अनुसार अच्छे या बुरे रूप में ढ़लते जाते हैं और कुछ समय की नाज़ुकता या संगीनता को समझते हुए अपने आप को ढाल लेते हैं। शायद इसी दूसरी स्थिति को व्यक्तित्व-प्रबंधन (personality management) कहते हैं। किस किस तरह से किसी मनुष्य का व्यक्तिव प्रबंधित होता है, अपने आप से, किसी और के द्वारा या परिस्थिति द्वारा, प्रस्तुत है कुछ परिस्थिति अध्ययन (case study) जिससे ये स्पष्ट होगा कि व्यक्ति कैसे प्रबंधित होता है और कैसे व्यक्तित्व-प्रबंधन से हम अपने जीवन को बेहतर बना सकते हैं।

1. एक बच्चा था, बच्ची भी हो सकती है। यही कोई चार पांच वर्ष उम्र होगी। माता पिता की एकलौती संतान। जबसे चलना बोलना सीखा पूरे घर में जैसे उसी का राज हो। जब सो जाये माँ कहती, "चलो अब थोड़ी शांति मिली।" दादी कहती , "अरे सन्नाटा छा गया।" कभी नहीं रोता , घर पर कोई आए तुरंत पैर छूता। पूछे जाने पर नाम बताता। बड़ा ही हँसमुख और बड़ा ही मिलनसार था।

एक दिन वो अपने पिता के साथ उनके दफ्तर गया । सबसे मिलना जुलना, बातें करना लगा था। जब तक पापा काम में व्यस्त थे वो बैठे आराम से दरबानजी से बातें कर रहा था । पापा घर से कहकर लाये थे, "शैतानी न करना, शोर न मचाना, चुपचाप बैठे रहना।" न उसने शैतानी की, न ही शोर मचाया। पर हाँ दफ्तर के दरबान, अर्दली सभी से अपनी छोटी सी ज़िन्दगी की सारी कहानी बता डाली। पापा जब चैम्बर से बाहर आए तो बच्चे को देख भौं सिकोड़ा और अंदर बुला लिए। पता नहीं बच्चे ने क्या देखा, क्या समझा, एकदम शाँत हो गया।

शाम को घर पहुँचकर पापा ने डाँट लगाई, "क्या ज़रूरत थी इतना

चहकने की? हर किसी के सामने शुरू हो जाते हो ।" बात छोटी सी थी पर कहीं जाकर बच्चे के मन को लग गई।

पापा का हमेशा का कहना था,"मेरा एक ही बच्चा है और उसे आदर्श इंसान बनाना है मुझे।"

आगे भी ऐसा ही होता रहा। हर कदम पर पिता अपने पुत्र के व्यक्तित्व को अपने हिसाब से प्रबंधित करता रहा। और एक दिन ऐसा आया जब एक प्रफुल्लचित्त बच्चा बिलकुल संजीदा हो गया। पिता प्रसन्न थे बच्चे को अनुशासित समझकर पर वो ये न देख पाए कि एक सुप्त ज्वालामुखी उनके सामने था, बस भड़कने की देर थी।

आजकल के बच्चों को हम बड़ा ही अधीर मानते हैं । पर क्या इसके लिए माता, पिता, समाज और साथियों का दबाव भी उत्तरदायी नहीं है?

2. माता पिता साधारणतया बच्चों की चिंता अधिक करते हैं, खासकर भारतीय माता पिता। ये माँ भी बच्चे का स्वास्थ्य, बच्चे का विकास, बच्चे की पढ़ाई इत्यादि को लेकर हर समय चिंतामग्न रहती थी। विद्यालय का गृहकार्य, कार्यक्रम, प्रतियोगिताएं, परीक्षा आदि दिन रात उसे तनावग्रस्त रखते थे। इसके इलावा पाठ्येतर गतिविधियाँ भी उसे उलझाये रखती थीं। गृहस्थी के बाकी काम तो वो निभा लेती थी, परिवार के अन्य सदस्यों का ख्याल भी बखूबी रखती परन्तु अपना ख्याल नहीं रखती। हर घड़ी बेचैन दिखाई पड़ती। उसका व्यक्तित्व सम्पूर्णरूप से मातृस्वरूप हो गया था। रिश्ता कोई भी हो, सबके प्रति सामान रूप से वात्सल्य भाव था। ऐसे में समस्या तो होनी थी।

जब उसे इसका एहसास हुआ तो उसने अपने आप को संभाला।

उसका व्यक्तित्व जो एक-आयाम का हो चला था, उस पर रोक लगाई और पुनः एक पत्नी, बहू, भाभी और माँ के किरदारों को सही-सही निभाने के प्रयास में सफल हुई। अब परिवार भी खुश था और वो भी खुश थी।

इस तरह कई बार जीवन में संतुलन लाने के लिए अपने व्यक्तित्व को प्रबंधित करना आवश्यक हो जाता है।

3. नौकरी से अवकाश प्राप्ति या कर्मठ जीवन से सन्यास कई बार मनुष्य को डिप्रेशन का शिकार बना देता है। एक ऐसे ही बुजुर्ग थे जिन्हे अवसरोपरांत उनकी पत्नी ने संभाला था। दुर्भाग्यवश साल गुज़रते-गुज़रते उनकी पत्नी का देहांत हो गया। बेटा, बेटी और अन्य रिश्तेदारों ने बहुत समझाया और सहारा दिया पर उन्होंने जैसे जीवन से मुँह मोड़ लिया था। लोगों से मिलना-जुलना अपने स्वास्थ्य का ख्याल रखना बस त्याग ही दिया था।

कुछ महीनों पश्चात् शायद उनके मन के कोने से उनकी अंतरात्मा ने आवाज़ दी। उन्होंने खुद को संभाला और धीरे धीरे जीवन कि मुख्यधारा से वापस जुड़े। अपने मृत्योन्मुख व्यक्तित्व को उन्होंने की पुनः जीवित किया। अपने नाती पोते को कहानियां सुनाने से उनकी वापसी की शुरुआत हुई। फिर अपने पड़ोस के अवकाश प्राप्त डिप्रेस्ड बुजुर्गों के परामर्शदाता बने । ज़रूरतमंद बच्चों को पढ़ाना शुरू किया और अपने साथ और भी लोगों को शामिल किया । अपने व्यक्तित्व को प्रबंधित कर अपने जीवन को उन्होंने नई दिशा दी और साथ ही अपने जैसे औरों की भी मदद की।

ज़रा सोचिये, हर कोई अगर ऐसे धनात्मक विचार रखे तो समाज कितना खुशहाल होगा?

डॉ. अंजना पोद्दार

बादल

उस रोज़ तेरा कहना था

सब असबाब उतार

मैं बादल बन गयी,

हलकी, मुलायम, सफ़ेद

खुशमिजाज़ फ़िज़ा में

रुई के फाहे सी फिरती।

अब तू यहाँ नहीं है

मैं फिर भी यहीं हूँ

स्लेटी, मुलायम, भारी

बदली बनी, बदली हुई।

सिमटी है मेरी अंक में

उन शामों संजोयी

तेरी आँखों में चमकती

मुस्कान की बूँदें,

जिन्हें ले फिर रही हूँ

तेरे दर की तलाश में

आँखों में लालसा लिए

इनमें तुझे भर लूँ

और जो ऐसा ना कर सकूं

तो बूँद-बूँद पिघल

तुझ पर बरसूँ।

श्रेया, छात्रा

स्थापना दिवस- 2018 संस्थान के निदेशक

उन्नत भारत अभियान कार्यशाला में अध्यापकों को प्रशिक्षण देते हुए प्रोफेसर एच सी वर्मा

अन्तराग्नि 2018 का शुभारम्भ

एक भारत श्रेष्ठ भारत -2018

उपनिदेशक द्वारा विज्ञान ज्योति प्रोजेक्ट शुभारंभ

हिंदी दिवस 2018

अनकही मोहब्बत को मिल गये शब्द
और टूटकर बह गयी लैंगिक दीवारें
इजहार के दरिया में..
यहाँ तक तो ठीक था..पर
प्यार जब फेवरेट सब्जेक्ट से
बन गया कंपल्सरी सब्जेक्ट
तब जैसे भद्दगी पिट गयी..
भावना से उठकर प्यार अब
स्टेट्स सिम्बल बन गया ..और
यहीं समस्या उठ खड़ी हुई..
कामायनी पर रख गयी फेयर एंड लवली
तो गुनाहों का देवता भी
ढंक गया फेसवॉश से..
प्यार बन गया इक होड़
और पहन कर फूहड़पन का चोला
तब्दील हो गया रिलेशनशिप में..
मौसम अब भी बदलता है..
शरद उदास है..
मौसम से ज्यादा गीतों में
मदिरा इमोशन लाती है..
वहीं हरसिंगार की खुशबू
और बौराई अमिया
आज भी हैं प्रतीक्षा में कि
कोई निराला कोई महादेवी
उनसे भी मुखातिब हो..
बेला और रजनीगंधा के फूल
गजरा बनने की ख्वाहिश लिए
अंग्रेजी गुलाब के सामने
समर्पण कर देते हैं..
पर सुध किसे है
इस बयार की..
इस चाँदनी की..
हिपहॉप एफएम
बजता है देर रात तक
और विविध भारती
आज भी ग्यारह बजे
चद्दर तान लेती है..

डॉ संदीप कुमार मिश्रा

समय की बयार

मच्छर अब जाने लगे हैं..
हवा में थोड़ी ताजगी है
और गर्मी फीकी पड़ चुकी है..
झींगुर की आवाज़ इक तरफा
स्थापित कर रही है..हल्की सी
चादर इक गुलाबी सी जो
गर्माहट बचा के रखती है..क्यूँकि
मौसम और इंसान की कभी नहीं बनती..
गर्मी से जब त्रस्त हो तो
जाड़े की याद आती है..और
जाड़ा उत्पात मचाये तो
गर्मी की शामें याद आती हैं
जब छाती तक चढ़ा के बनियाइन
दो लोटा पानी
एक सांस में खींच जाते हैं..
पर बीच के शरद और बसंत का
इक अलग ही मिज़ाज़ होता है..
मौसम से कोई शिकायत नहीं..
तापमान ने शरीर से
जैसे कोई संधि कर ली हो..
जाती गर्मी-आती सर्दी और
आती गर्मी-जाती सर्दी
के संक्रमण काल में
दीपावली-होली के महापर्व
मानों चार चाँद लगा देते हैं
हाँ, दीपावली से याद आया..
कीड़ा-बिच्छू का जंतर और
नजर उतारने का मंतर
पिछली बार सीखना रह गया था ..
अबकी सीखकर ही रहेंगे..
सीखने की कोई उम्र नहीं होती..
और न ही प्यार की..
तेरे प्यार की हो उम्र सनम इतनी..
तेरे नाम से शुरू तेरे नाम से खत्म..
क्या दौर था वो भी..
अस्सी वाला..जब सिनेमा
दिखा रहा था राह प्यार की..
सामाजिक संतापों से जकड़ी मोहब्बत
सिसकियों से उठकर
करने लगी गर्जना..
और प्यार कॉलेजों में
फेवरेट सब्जेक्ट बन गया..

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में विनायक दामोदर सावरकर एक ऐसा नाम है जो सदैव विवादों से घिरा रहा। इन विवादों से परे इस संबंध में दो मत नहीं हो सकते कि वे अपने जीवन के प्रारंभिक वर्षों से ही एक निडर क्रान्तिकारी थे। सावरकर विद्याध्ययन के लिए लंदन गए थे, वहाँ भी वे देश-हित में व्यस्त रहे। राजद्रोहात्मक गतिविधियों के कारण वे बंदी बना कर भारत लाए गए। कानूनी कार्यवाई के उपरान्त उन्हें दो अपराधों के लिए एक के बाद एक, दो बार आजन्म काला पानी का दंड दिया गया।

अपने लंदन प्रवास काल में सावरकर ने 1857 के विद्रोह की पुनर्व्याख्या और उसका पुर्नमूल्यांकन करने का विचार किया था। इतिहास साक्षी है कि 10 मई 1857 को आरंभ हुए इस सशस्त्र विद्रोह ने अंग्रेजी सरकार को भारी संकट में डाल दिया था। लेकिन अधिकांश अंग्रेज इतिहासकारों ने इस विद्रोह को मात्र गदर या सिपाही विद्रोह की संज्ञा प्रदान की। उन्होनें एक स्वर से यह प्रमाणित करने का प्रयास किया कि यह केवल सैनिक विद्रोह था और आम जन का इससे कोई लेना देना नहीं था। अंग्रेज लेखक अपने मन्तव्य में पूर्ण सफल रहे। भारतीय इतिहासकारों ने भी उन्हीं का अनुसरण किया और आजादी के बाद भी अनेक वर्षों तक 1857 की घटना गदर के नाम से जानी जाती रही। इतिहास की पुस्तकों में भी इसे म्यूटिनी अथवा सिपाही विद्रोह ही कहा गया।

आज ऐसे विचारकों और इतिहासकारों की एक लंबी सूची है जो 1857 के विद्रोह को जन विद्रोह मानते हैं और इस संबंध में भी दो मत नहीं कि इस दिशा में पहला कदम वीर सावरकर ने उठाया था।

जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में तत्कालीन साहित्य का महत्वपूर्ण स्थान होता है। यदि साहित्य समाज का दर्पण है तो दूसरी ओर उसमें इतनी शक्ति भी है कि वह समाज की दशा एवं दिशा बदल सकता है। किसी भी देश के किसी भी क्रांतिकारी संगठन में क्रान्तिकारी साहित्य की रचना का विशेष महत्व रहा है। गुप्त संगठन होने के कारण विशाल सार्वजनिक सभाओं और भाषणों के अवसर उन्हें उपलब्ध नहीं थे। वे अपने विचारों को ट्रेक्टस (पर्चों), लघु पुस्तिकाओं और पुस्तकों के माध्यम से ही आम जनता तक पहुँचा सकते थे। विनायक दामोदर सावरकर ने इसे समझा तथा इस दिशा में अथक प्रयास किए। इन प्रयासों में सवार्धिक महत्वपूर्ण प्रयास 1857 के सिपाही विद्रोह को भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के रूप में प्रस्तुत करना था। यह एक दिन

में पूरा होने वाला कार्य नहीं था। निश्चय ही, वर्षों उनके हृदय और मस्तिष्क जगत में इस विषय को लेकर विचार मंथन होता रहा होगा। उन्होंने स्वयं लिखा है कि जब मैंने 1857 के विद्रोह के भव्य और महान दृश्य का सूक्ष्म निरीक्षण करना आरंभ किया तो मैं आश्चर्य चकित रह गया। मैनें सोचा उस समय का वास्तविक दृश्य अपने देशवासियों के समक्ष प्रस्तुत करूँगा, इसी भावना के सहित मैं चेष्टारत रहा। तलवार नामक पत्र में भी सावरकर ने एक लेख द्वारा इस पुस्तक को लिखने के उद्देश्य को स्पष्ट किया था। उन्होंने लिखा था स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए भारत एक बार पुनः उठे और पराधीनता से मुक्ति के लिए भारतीय जनता द्वारा किया जाने वाला स्वातंत्र्य युद्व समर यशस्वी हो। यही 1857 का 'स्वातंत्र्य-समर' नामक ग्रंथ लिखे जाने का उद्देश्य है।

सावरकर का कहना था कि जिस राष्ट्र को अपने अतीत के संबंध में ही वास्तविक ज्ञान न हो, उसका कोई भविष्य नहीं होता। अपने गौरवशाली अतीत की नींव को आधार बनाकर भविष्य की सुन्दर इमारत का निर्माण होना चाहिए। सावरकर ने अपने ग्रंथ की भूमिका में लिखा था कि "आज भी ऐसे व्यक्तियों की पर्याप्त संख्या उपलब्ध है जिन्होंने इस प्रलयंकर संग्राम को अपनी आँखों से देखा है अथवा इसमें योगदान भी दिया है। अतः यदि कोई देशभक्त इतिहास लेखक उत्तर भारत में जाकर इनसे मिलता है तो आँखों देखा हाल प्राप्त हो सकता है।" इस साक्ष्य की तुलना अन्य किसी साक्ष्य से नहीं की जा सकती।

1857 का विद्रोह हमारा अतीत था, हमारे इतिहास का स्वर्णिम अध्याय था। इतिहास पर लेखन प्रमाणित तथ्यों के अभाव में संभव नहीं था। भारत में रहते हुए गुप्त संगठन का हिस्सा बनने के बाद सावरकर के लिए ऐसी परिस्थितियाँ नहीं थीं जिनमें वे यहीं रहते हुए

इस दिशा में कार्य कर सकते। लंदन में श्याम जी, कृष्ण वर्मा और उनके इंडिया हाउस छात्रावास तथा इंडियन सोशियोलॉजिस्ट पत्रिका से जुड़ने के बाद वहाँ उन्हें एक ऐसा आधार और वातावरण प्राप्त हुआ जिसमें रह कर वे अपने लक्ष्य को मूर्त रूप प्रदान कर सकते थे। लंदन की इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी वह स्थान था जहाँ बैठकर उन्होंने हफ्तों, महीनों तमाम मूल स्रोतों का अध्ययन किया एवं तमाम साक्ष्यों के आधार पर इस ग्रंथ की रचना की। 1908 में उन्होंने अपना कार्य पूरा किया। उस समय सावरकर की आयु मात्र 23-24 वर्ष थी। मूल पुस्तक मराठी भाषा में लिखी गई थी।

उस समय सावरकर को एक और समस्या का भी सामना करना पड़ा। उनकी पुस्तक के दो अध्याय गायब हो गये। सावरकर ग्रंथ लिखकर शांत नहीं रहे थे। उन्होंने लंदन स्थित फ्री इंडिया सोसाइटी जो अभिनव भारत की ही एक शाखा थी, की बैठकों में अपनी पुस्तक के कुछ हिस्सों का अंग्रेजी में अनुवाद करके सुनाया था। चूँकि ब्रिटिश गुप्तचर विभाग की दृष्टि इन भारतीय युवकों पर सदैव रहती थी, इन भाषणों के द्वारा सावरकर की पुस्तक का विद्रोही स्वर उन तक पहुँच गया था। परिणाम स्वरूप सावरकर को उपर्युक्त हानि उठानी पड़ी थी। अब सावरकर ने सुरक्षा एवं प्रकाशन की दृष्टि से ग्रंथ की पांडुलिपि को भारत पहुँचाने का निर्णय लिया। ग्रंथ लंदन से महाराष्ट्र आ गया। तमाम प्रयासों के उपरान्त अभिनव भारत के ही एक सदस्य द्वारा प्रकाशित स्वराज्य पत्र के संपादक ने इस ग्रंथ को प्रकाशित करने का साहस किया। सरकारी तंत्र को इसकी सूचना भी उपलब्ध हो गई, अत: महाराष्ट्र के सभी मुद्रणालयों पर छापे पड़ने लगे। सौभाग्य से एक पुलिस अधिकारी ने स्वराज्य के संपादक को छापा पड़ने की पूर्व सूचना दे दी। सूचना मिल जाने के कारण पांडुलिपि सुरक्षित स्थान पर पहुँचा दी गई।

यह स्पष्ट हो चुका था कि भारत में ग्रंथ का प्रकाशन संभव नहीं था, ऐसी स्थिति में पांडुलिपि को पेरिस भेज दिया गया । वहाँ से यह सावरकर के पास लंदन पहुँचा दी गई। अब यह विचार किया जाने लगा कि इस ग्रंथ को यूरोप से ही प्रकाशित किया जाए। जर्मन में संस्कृत ग्रंथ मुद्रित होते थे। लेकिन कम्पोजीटरों को मराठी भाषा का ज्ञान नहीं था। इसके साथ ही उन्हें वहाँ की देवनागरी लिपि भी पसंद नहीं आई। मुद्रण की संपूर्ण योजना पर अत्यधिक व्यय हो चुका था। अत: ग्रंथ को मराठी में मुद्रित करने का विचार त्याग दिया गया।

तत्कालीन परिस्थिति में एक ही मार्ग शोध था, ग्रंथ का अंग्रेजी में अनुवाद करके उसे अंग्रेजी भाषा में प्रकाशित कराया जाए। लंदन के कुछ मराठी छात्रों ने ग्रंथ का अंग्रेजी अनुवाद करने की जिम्मेदारी ली। यह कार्य वी वी एस अय्यर की देख-रेख में पूर्ण हुआ। यद्यपि ये सभी छात्र उच्च शिक्षा हेतु आई सी एस अफसर अथवा बैरिस्टर बनने के उद्देश्य से लंदन आये थे लेकिन ये अभिनव भारत से जुड़े हुए थे और सशस्त्र क्रांति के प्रति सहानुभूति रखते थे। "अभिनव भारत" भारत में एक क्रान्तिकारी संगठन था जिसकी स्थापना स्वयं सावरकर ने की थी। वी वी एस अय्यर का क्रान्तिकारी आंदोलन में महत्वपूर्ण योगदान रहा।

लंदन में ग्रंथ का प्रकाशन संभव नहीं था। पेरिस भी प्रवासी भारतीय क्रांतिकारियों का केन्द्र था, लेकिन इंग्लैड के दबाव के कारण फ्रांसीसी सरकार ने सख्त रूख अपनाया हुआ था। अत: फ्रांस में भी इसका मुद्रण संभव नहीं था। अंतत: हॉलैंड के एक प्रकाशक ने ग्रंथ को प्रकाशित करना स्वीकार कर लिया। अब क्रांतिकारियों ने कूटनीति से काम लिया। उनकी ओर से यह प्रचारित किया जाता रहा कि ग्रंथ फ्रांस में ही प्रकाशित हो रहा है। इस कारण सरकारी तंत्र का पूरा ध्यान फ्रांस पर ही रहा। पुस्तक हॉलैंड में मुद्रित हो गई। ध्यान देने की बात यह है कि अंग्रेजी सरकार के संज्ञान में ऐसा नहीं था, फिर भी सरकार की ओर से पुस्तक पर प्रतिबंध लगा दिया गया था। पुस्तक छपने से पूर्व ही प्रतिबंधित हो जाये, यह स्वयं में एक विचित्र घटना थी। यह प्रतिबंध इस बात का प्रमाण था कि सरकार की दृष्टि में इस पुस्तक का कितना महत्व था और वह इसे कितना खतरनाक समझती थी।

सावरकर ने ब्रिटिश सरकार के इस प्रतिबंध का विरोध किया। उन्होनें लंदन टाइम्स में एक पत्र लिखा था जिसमें उन्होंने कहा था कि पुस्तक में क्या लिखा है, यह जाने बगैर किसी अप्रकाशित पुस्तक पर प्रतिबंध कैसे लगाया जा सकता है? पुस्तक पर राजद्रोहात्मक होने का आरोप किस आधार पर लगाया जा रहा है? आदि-आदि। लंदन टाइम्स ने सावरकर के इस पत्र को न केवल प्रकाशित किया था वरन् सरकार की आलोचना भी की थी।

1909 में मुद्रित होने के बाद ग्रंथ को फ्रांस भेज दिया गया। पेरिस के प्रवासी भारतीय क्रान्तिकारियों की मदद से इस ग्रंथ की प्रतियों को अनेक प्रकार के उपायों द्वारा भारत भेजा गया। पहले उपाय के

अन्तर्गत पुस्तक का कवर किसी और विषय से संबंधित छापा गया। अंदर की विषय सामग्री भारतीय 'स्वातंत्र्य समर' की थी। आवरण पृष्ठ को देखकर प्रथम दृष्टया पुस्तक किसी अन्य विषय की प्रतीत होती थी। दूसरी विधि द्वारा सन्दूकों में नकली तल लगाकर दो तलों के बीच में पुस्तक को रख कर भारत भेजा गया। (इसी विधि से रिवाल्वर भी भेजे जाते थे)। पुस्तक की प्रतियों से भरा एक संदूक सिकन्दर हयात खान भी भारत लाये थे, जो बाद में पंजाब के प्रधानमंत्री बने थे।

सावरकर का सपना था कि यह ग्रंथ प्रत्येक देशवासी तक पहुँचे। यह तो संभव नहीं था। लेकिन उनके साथियों ने इस ग्रंथ को न केवल भारत में वरन् विदेशों में जहाँ-जहाँ भी प्रवासी भारतीय देशभक्त थे, वहाँ-वहाँ पहुँचा कर सावरकर के सपने को पूरा करने का हर संभव प्रयास किया। इस बात के प्रमाण हैं कि बड़ी संख्या में क्रान्तिकारियों एवं सैनिकों के बीच यह ग्रंथ पढ़ा गया। इससे उन्होंने प्रेरणा ली। उन दिनों यह ग्रंथ गीता की तरह पवित्र और उसके समकक्ष माना जाता था।

1947 से पहले अनेक बार इस ग्रंथ के संस्करण प्रकाशित हुए। 1909 के बाद लाला हरदयाल ने इसका द्वितीय संस्करण अमरीका से प्रकाशित कराया था। लाला हरदयाल ने गदर पार्टी के गदर पत्र में भी उर्दू, हिंदी, पंजाबी भाषाओं में इसके अनुवाद प्रकाशित कराये थे। गदर पत्र का प्रकाशन अमरीका से बड़ी संख्या में होता था। देश-विदेश में इसके वितरण की व्यवस्था थी। लोग बड़े चाव से इसे पढ़ते थे। तृतीय संस्करण 1929 में भारत में सरदार भगत सिंह ने गुप्त रूप से प्रकाशित कराया था। भगत सिंह की इस ग्रंथ पर बड़ी आस्था थी। चौथी बार 1942 में नेता सुभाष चन्द्र बोस ने सुदूर पूर्व से इसे प्रकाशित कराया। स्वतंत्रता पूर्व ही अन्य भारतीय भाषाओं में भी इसके अनुवाद हुए यद्यपि पुस्तक पर प्रतिबंध बना रहा। 1946 में सावरकर साहित्य के ऊपर लगे प्रतिबंध के हटने के बाद ही यह पुस्तक आजाद हो सकी।

मूल मराठी पांडुलिपि की भी एक लंबी कहानी है। 1910 में सावरकर बंदी बना लिए गए थे। लंदन की अपेक्षा पेरिस अधिक सुरक्षित समझा जाता था अतः उस समय मूल पांडुलिपि पेरिस में मैडम भीकाजी कामा के पास भेज दी गई। 1914 में प्रथम विश्व युद्ध आरंभ हुआ। फ्रांस इंग्लैंड का साथी था। अतः अब फ्रांस भी भारतवासियों के लिए सुरक्षित नहीं रह गया था। इस राजनीतिक उथल पुथल के दौरान ऐसे हालात बने जिसमें स्वयं मैडम कामा पर भी संकट आ सकता था, अतः उन्होनें पहले ही इस पांडुलिपि को डॉ-कुटिनो को सौंप दिया। डॉ-कुटिनो उस समय फांस में ही थे। शीघ्र ही वे अमरीका चले गए। डॉ- कुटिनो सावरकर के मित्र व सहयोगी तथा अभिनव भारत संगठन के एक प्रमुख कार्यकर्ता थे। उन्होंने अनेक वर्षों तक इस मराठी ग्रंथ को अपने पास सुरक्षित रखा। 1947 में डॉ-कुटिनो नें अपने मित्र राम लाल बाजपेयी और डॉ-मुंजे को मराठी प्रति के विषय में सूचित किया। फिर उन्होंने इस प्रति को किसी विश्वसनीय प्राध्यापक द्वारा सावरकर के पास भेजा। उस समय तक सावरकर महात्मा गाँधी की हत्या के अपराध में बंदी बनाए जा चुके थे। निर्दोष साबित होने के बाद जब सावरकर मुक्त हुए तब इन प्राध्यापक महोदय ने मूल पांडुलिपि सावरकर को सौप दी। इस प्रकार एक लंबा समय व्यतीत कर यह अमानत अपने रचयिता के पास वापस आई। इसके साथ ही एक लंबी दास्तान का अंत होता है।

डॉ ऊषा निगम

ऐसा नहीं कि उससे कोई सिलसिला नहीं।
वो शख्स जिससे आज तलक मै मिला नहीं।

मैं जान गया कि मुझे पहचानता है वो ,
अब वो भी मुकर जाए तो कोई गिला नहीं।

गुमराह कर रहे थे चराग़ों से रहनुमा ,
सूरज बता रहा था कि खतरा टला नहीं।

मुश्किल नहीं है फिर कोई भी जंग जीतना,
एक शख्स चाहिए मुझे बस, काफिला नहीं।

ये आखिरी है, आखिरी का मतलब आखिरी
साकी पे 'ज़हर' फिर भी मेरा बस चला नहीं।

विनायक सोनी 'ज़हर'
छात्र

मेज़र स्मिथ तनाव में हैं। उनकी रेजिमेंट अभी भी नॉरमैंडी के एक शहर में अपनी पकड़ बनाने की कोशिश कर रही हैद्य उनकी प्रमुख चिंता जर्मन लुफ्तवाफ (Luftwaffe) लड़ाकू विमानों से होने वाला हमला है। ये लड़ाकू विमान सहयोगी सेनाओं के सैनिकों के बीच कुख्यात हैं। लुफ्तवाफ लड़ाकू विमान अचानक कहीं भी प्रकट होकर बमबारी कर देते हैं, तथा सैनिकों को प्रतिक्रिया करने के लिए प्रायः पर्याप्त समय ही नहीं मिल पाता। सौभाग्य से मेज़र स्मिथ के पास एक बहुत ही गोपनीय सेंसर टेक्नालाजी है जो दुश्मन के लड़ाकू विमानों का मीलों दूर से ही पता लगाने में सक्षम है। रेडियो डिटेक्शन एण्ड रेन्जिग (RADAR) अत्यंत बारीकी से पहरा देने वाली एक तकनीक है जिसे द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान यूके, यूएस, जर्मनी, जापान, फ्रांस, इटली, यूएसएसआर तथा नीदरलैंड के अनुसंधानकर्ताओं द्वारा स्वतंत्र रूप से विकसित किया गया था।

रडार का मूलभूत कार्यकारी सिद्धान्त बहुत ही सामान्य होता है । किसी भी तरंग (ध्वनि, प्रकाश, विद्युत चुम्बकीय, यहां तक कि पानी की तरंगों) का एक निश्चित वेग होता है । उद्गम (source) से प्रक्षेपित की गई तरंग एक दूरी को पूर्ण करने के लिए कुछ न कुछ समय लेती है। रडार में उद्गम से प्रक्षेपित की गई विद्युत चुम्बकीय तरंग (Electromagnetic wave) लक्ष्य (Object) से टकराने और फिर उद्गम की ओर पुनः परावर्तित (Reflection) होने के मध्य एक निश्चित दूरी तय करती है। इस प्रकार तरंग को प्रक्षेपित करने से लेकर रडार पर परावर्तित होने तक के समय का आकलन करके लक्ष्य-दूरी की गणना की जा सकती है। आधुनिक रडार कई उन्नत क्षमताओं से युक्त होती हैं, जिनमें लक्ष्य की गति ज्ञात करना, लक्ष्य का आकार, वास्तविक समय में लक्ष्य का पता लगाना तथा एक साथ कई लक्ष्यों का पता लगाने जैसी क्षमताएं शामिल हैं परन्तु इनका मूलभूत सिद्धान्त एक ही है।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद विश्व में काफी बदलाव आया है। रडार की पकड़ से बच निकलना कई अनुसंधानकर्ताओं का विशेष रूचि वाला शोध-विषय हो गया है। सोचिए क्या होगा यदि रडार पर पकड़े जाने वाले लक्ष्य को इस तरह से बनाया जाए कि इससे टकराने वाली तरंगें परावर्तित ही न हो सकें। एक भौतिक विज्ञानी को यह विचार एक ब्लैकहोल के समान प्रतीत हो सकता है किन्तु यह संभव है। रडार विद्युत चुम्बकीय वर्णक्रम (Electromagnetic spectrum) के अंतर्गत एक विशिष्ट तरंग माइक्रोवेव का प्रयोग करता है, जिसका आवृत्ति-विस्तार 100 मेगाहर्ट्ज से 100 गीगाहर्ट्ज तक होता है। यद्यपि लक्ष्य से परावर्तित तरंग पूर्णतया समाप्त नहीं की जा सकती, किन्तु परावर्तित तरंग का आयाम (Amplitude) कम करना पर्याप्त एवं व्यवहारिक रूप से संभव हो सकता है। यहीं पर आवश्यकता होती है माइक्रोवेव अवशोषक के विकास की।

जब विद्युत चुम्बकीय तरंग किसी वायुयान, कार, जलयान, भवन अथवा छोटे पक्षी जैसी किसी भी वस्तु से टकराएगी तो तरंग पीछे की ओर परावर्तित होगी अथवा तकनीकी शब्दों में प्रकीर्णित (scattered) होगी। तरंगों का यह प्रकीर्णन विभिन्न वस्तुओं के लिए भिन्न-भिन्न होता है। एक विशाल वायुयान किसी पक्षी की तुलना में निश्चित ही अधिक तरंगे फैलायेगा। इसी प्रकार एक धातु की वस्तु लकडी की वस्तु की तुलना में अधिक तरंगे फैलायेगी। माइक्रोवेव अवशोषक (Microwave absorber) विशिष्ट रूप से निर्मित सतहें या आवरण होती हैं, जो रडार लक्ष्य से तरंगों के वापसी प्रकीर्णन को अत्यंत कम कर देती हैं या दूसरे शब्दों में ये तरंगें इन अवशोषकों द्वारा सोख ली जाती हैं। इस प्रकार माइक्रोवेव अवशोषक से रहित लक्ष्य की तुलना में इस अवशोषक से युक्त लक्ष्य तरंगों का प्रकीर्णन न के बराबर करता है और रडार की पकड़ में नहीं आता।

एफ-22 राप्टर, एफ-35 लाइटेनिंग आदि गुप्त विमानों (Stealth aircraft) में रडार अवशोषक सामग्री का प्रयोग होता है, जो आपतित (Incident) विद्युत चुम्बकीय तरंगों को ऊष्मा-ऊर्जा में परिवर्तित कर देती हैं। इस प्रकार अत्यंत अल्प शक्ति की विद्युत चुम्बकीय तरंगें ही वापसी प्रकीर्णन पर शेष रहती हैं, जिससे इन विमानों को रडार पर पकडना बड़ा ही मुश्किल होता है। इसी प्रकार की प्रौद्योगिकी गुप्त टैंक एवं जलयानों के निर्माण में भी प्रयुक्त होती है। वर्तमान मानक के अनुरूप अधिकांश अवशोषक सतहें आपतित (Incident) विद्युत चुम्बकीय ऊर्जा का 90% तक अवशोषित कर सकती हैं। इसका तात्पर्य यह हुआ कि यदि अवशोषक-रहित वायुयान रडार से 50 किलोमीटर की दूरी पर पकड़ में आता है तो अवशोषक-युक्त वायुयान तभी पकड़ में आ सकता है जब यह रडार से लगभग 25 किलोमीटर की दूरी पर यानी तुलनात्मक रूप से अधिक समीप स्थित हो। इन परिस्थितियों में वायुयान, रडार की पकड़ में आये बिना दुश्मन की सीमा में और अन्दर तक घुस कर अपने अभियान को भली-भांति अंजाम दे सकता है। यदि अत्यधिक समीपता में आ जाने के कारण यह पकड़ में आ भी गया तो भी दुश्मन की एंटी बैलिस्टिक मिसाइल

के पास प्रतिक्रिया करने के लिए पर्याप्त समय ही नहीं बचेगा।

प्रायः इन रडार अवशोषक पदार्थों में डाई-इलैक्ट्रिक कम्पोजिट एवं धातु फाइबर के साथ-साथ फेराइट पदार्थ होते हैं। आमतौर पर प्रयुक्त पदार्थ "आयरन बॉल पेंट" होता है। आयरन बॉल पेंट में आयरन की अत्यंत सूक्ष्म गोलियां होती हैं जो आने वाली रेडियों तरंगों से लयबद्ध होकर अनुनाद करने लगती हैं। इस प्रक्रिया में इन तरंगों की ऊर्जा का अधिकांश भाग ऊष्मा के रूप में व्यय हो जाता है। तरंगों की शक्ति क्षीण होने के फलस्वरूप प्रकीर्णित तरंगें आंशिक रूप से ही संसूचक (detectors) तक वापस पहुंच पाती हैं।

माइक्रोवेव अवशोषक का प्रयोग असैनिक क्षेत्रों जैसे विद्युत चुम्बकीय परीक्षण, पदार्थों के अभिलाक्षणिक विश्लेषण (Characterization), ईएमआई-ईएमसी अनुप्रयोगों आदि में भी देखने को मिलता है। रेडियो फ्रीक्वेंसी उपकरणों के अभिलाक्षणिक विश्लेषण के लिए माइक्रोवेव एन-एकोइक चैंबर में पिरामिडल अवशोषकों का व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है। परावैद्युत हानि युक्त पदार्थों (Dielectric lossy material) से निर्मित पिरामिड के आकार के खंडों की श्रंखला, वृहद् आवृत्ति-विस्तार (Wide frequency range) वाली विद्युत चुम्बकीय तरंगों को अवशोषित करने में भली-भांति सक्षम है किन्तु इस तरह के अवशोषक वाहनों एवं यानों के दृष्टिकोण से अत्यंत भारी होते हैं।

हाल ही में, कुछ ऐसे अवशोषक तैयार किए गए हैं जो केवल माइक्रोवेव तक सीमित न होकर विद्युत चुम्बकीय वर्णक्रम (Electromagnetic spectrum) के विशिष्ट बैंड निकट-अवरक्त (Near Infrared) की आवृत्ति-विस्तार (Frequency range) वाली तरंगों को भी अवशोषित करने की क्षमता रखते हैं। इन्हें हम मेटा-मैटेरियल्स कहते हैं। गोपनीय अनुप्रयोगों की दिशा में ये पदार्थ बहुत ही मजबूती के साथ उभरे हैं। मेटा मैटेरियल आधारित अवशोषक बहुत पतले, हल्के एवं मितव्ययी होते हैं। ये माइक्रोवेव से लेकर दृश्य प्रकाश (Visible part of light) जिसमें टेराहर्ट्ज एवं अवरक्त प्रकाश (Infrared) भी शामिल हैं, के विविध आवृत्ति-विस्तार तक, लगभग शत-प्रतिशत अवशोषण क्षमता का प्रदर्शन करते हैं। मेटा-मटेरियल अवशोषक विशिष्ट रूप से समतल सतह होती है, जिसमें छोटे-छोटे विद्युत चालकीय नमूने (Conductive Patterns), जिन्हें इकाई कोश (Unit cell) कहते हैं, श्रंखलाबद्ध रूप से (Form of array) अंकित होते हैं। ये पैटर्न्स एक परावैद्युतीय अधःस्तर (Dielectric Substrate) पर अंकित किए जाते हैं, जिसके पीछे एक धातुयी ग्राउंड सतह होती है। द्वि-आयामी पैटर्न होने के कारण इन इकाई कोशों (Unit cell) का निर्माण अपेक्षाकृत आसान होता है। मेटा-मटिरियल संरचना एक विशेष आवृत्ति अथवा विविध आवृत्तियों पर अनुनाद (Resonance) करती है और इन आवृत्तियों पर ही विद्युत चुम्बकीय तरंगों को अवशोषित करती है।

आमतौर पर मेटा मैटेरियल संकीर्ण वर्णक्रम (Narrow-band) में कार्य करते हैं, इसलिए ये रक्षा अनुप्रयोगों के लिए उपयुक्त नहीं होते। रक्षा रडार प्रायः 2 से 18 गीगाहर्ट्ज के आवृत्ति-विस्तार में परिचालित होते हैं इसलिए रक्षा अनुप्रयोगों के लिए प्रारूपित (Designed) अवशोषक वृहद-वर्णक्रम (Broad-band) प्रकृति के होने चाहिए जो वांछित आवृत्ति-विस्तार को समाविष्ट कर सकें। भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान कानपुर के एक अनुसंधान दल द्वारा मेटा मैटेरियल आधारित माइक्रोवेव अवशोषकों के पट्ट-विस्तार (Band-width) को बढ़ाने की दिशा में महत्वपूर्ण प्रयास किये गये है। इन प्रयासों में दो अथवा दो से अधिक अनुनादों का संयोजन तथा धातु एवं परावैद्युतीय अधःस्तरों से निर्मित विभिन्न अनुनादीय परतों का क्रमिक संयोजन आदि शामिल है। दो पृथक अनुनादों (Individual resonance) को संयोजित करने और इस प्रकार अधिक पट्ट-विस्तार वाला अवशोषक प्राप्त करने के लिए दो (समान आकृति किन्तु पृथक परिमाण वाले) अनुनादकों को इकाई कोशों (Unit cell) में 2x 2 की श्रंखला में व्यवस्थित किया जाता है।

आमतौर पर इस प्रकार की संरचना कुछ मेगाहर्ट्ज आवृत्ति-क्रम का पट्ट-विस्तार (Band-width) ही उपलब्ध कराती हैं। यद्यपि यह पट्ट-विस्तार इन अवशोषकों के लिए लघु होता है, तथापि इनके हल्के, बहुत ही पतले एवं मितव्ययी होने के कारण बहुत से रेडियों-आवृत्ति अनुप्रयोगों (Radio frequency applications) के लिए इन्हें प्राथमिकता दी जाती है। इसके अतिरिक्त पट्ट-विस्तार वृद्धि की दिशा में बहु-पर्तीय तकनीक (Multi-layer technique) भी खोजी जा चुकी है, जो सकारात्मक सिद्ध हुई है। इसमें धातु एवं परावैद्युत पदार्थ से बनी विशिष्ट विन्यास (specific configurations) वाली संरचना का प्रयोग किया जाता

है। यहां पर पुनः अधिक से अधिक अनुनाद-आवृत्तियों को विलय करने की अवधारणा का प्रयोग किया गया है, जिसमें प्रत्येक एकल पर्त तो कुछ मेगाहट्र्ज क्रम का ही पट्ट-विस्तार उपलब्ध कराती है लेकिन उनका संयुक्त प्रभाव कई सौ मेगाहट्र्ज का पट्ट-विस्तार देता है। इन समस्त परिवर्धित पट्ट-विस्तार अवशोषकों (Band width enhanced absorbers) का व्यवहारिक अनुप्रयोग अभी भी सीमित है (अधिकतम उपलब्ध पट्ट-विस्तार 1 से 1.5 गीगाहट्र्ज है) क्योंकि हवाई और रक्षा अनुप्रयोगों के लिए पट्ट-विस्तार इससे कहीं अधिक अपेक्षित है।

इसलिए अभीष्ट पट्ट-विस्तार की प्राप्ति के लिए अनुनादीय संरचना की अवधारणा का प्रयोग करने के स्थान पर कुछ अन्य अवशोषण प्रक्रियाओं पर भी विचार किया जाना चाहिए। सर्किट एनालॉग अवशोषक (CAAbsorber) इस संकीर्ण पट्ट समस्या (Narrow band problem) का एक कारगर निदान है, जिसमें उपरोक्त वर्णित परावैद्युतीय क्षति (Dielectric loss) युक्त संरचना से भिन्न ऊपर की प्रतिरोधी सतह ओह्मिक क्षति (Ohmic loss) के कारण आपतित विद्युत चुम्बकीय तरंग (EM wave) को अवशोषित करती है। हमारे दल ने कई विस्तृत-पट्ट (Broad band) सर्किट एनालॉग अवशोषक प्रस्तावित किए हैं जोकि परिणामी प्रतिरोधों (Lumped resistors) से आच्छादित आवर्ती वर्ग कुंडली संरचना (Periodic square loop structures) से बने होते है। ये लंप्ड प्रतिरोध मानक प्रतिरोध होते हैं किन्तु माइक्रोवेव आवृत्ति विस्तार में कार्य कर सकते हैं। ये लंप्ड प्रतिरोध ओह्मिक हानि (Ohmic loss) के रूप में योगदान करने में सहायता करते हैं, जो आपतित माइक्रोवेव ऊर्जा को अवशोषक पट्ट (Absorption band) के विस्तार के अनुरूप व्यय करते हैं। इस प्रकार का एक बहुपर्तीय ब्रॉडबैन्ड अवशोषक चित्र-1 में दर्शाया गया है । यह 5 से 18 गीगाहट्र्ज के आवृत्ति विस्तार में 90% से भी अधिक अवशोषण उपलब्ध कराता है जो अधिकांश रक्षा रडार बैंड के लिए उपयुक्त है।

इसमें चुने हुये परावैद्युत (Dielectric) पर पैसिव लंप्ड प्रतिरोधों को स्थापित कर विस्तृत-पट्ट अवशोषण (Broad band absorption) को अपेक्षाकृत कम मोटाई के साथ प्राप्त किया जाता है। यद्यपि एक तथ्य यह भी है कि पृथक-पृथक पैसिव अवयवों (Passive elements) को प्रत्येक इकाई कोश संरचना से एक द्विआयामी पुनरावृत्तीय श्रृंखला के रूप में जोड़ना, इसके निर्माण की जटिलता एवं समय की खपत को बहुत अधिक बढ़ा देता है। उच्च आवृत्ति अवयवों की लागत एवं श्रंखला समूह के स्वयं के आकार के चलते विनिर्माण की लागत भी बढ़ जाती है क्योंकि वृहद श्रंखला के लिए अधिकाधिक लंप्ड अवयवों (Lumped elements) की आवश्यकता होती है। इस समस्या का समाधान किया जा सकता है यदि लंप्ड अवरोधकों वाले धात्विक पैबंद संरचना (Metallic patch design) के स्थान पर संपूर्ण संरचना को ही एक प्रतिरोधक प्रलेप (Resistive paint) के प्रयोग से इस प्रकार निर्मित किया जाये कि यह समस्त संरचना में वांछित प्रतिरोध का वितरण (Distributed Resistance) कर सके। इस प्रकार विस्तृत-पट्ट अवशोषण (Broad band absorption) को कम समग्र मोटाई के साथ-साथ समय एवं लागत के दृष्टिकोण से भी आसानी से निर्मित किया जा सकता है। प्रतिरोधी स्याही (Resistive ink) का प्रयोग करके वृहद्पट्ट बहुपर्तीय माइक्रोवेव अवशोषकों में से एक चित्र 2 के माध्यम से दर्शाया गया है। इस अवशोषक का निर्माण प्रतिरोधी सतह की परतों का प्रयोग करके किया जाता है जिसके अंतर्गत प्रत्येक पर्त में कम लागत वाली एफ आर-4 शीट पर प्रतिरोधी स्याही के उपयोग से प्रतिरोधी नमूनों (Resistive patterns) को आवर्ती व्यवस्था मे मुद्रित किया जाता है। यह अवशोषक 2.00 से 18.50 गीगाहट्र्ज आवृत्ति-विस्तार, जो लगभग समस्त वांछित रडार बैंड को समाहित करता है, के लिए 90% से भी अधिक अवशोषण उपलब्ध कराता है।

प्रतिरोधी पेंट का विकल्प लागत समाधान तो देता है परन्तु परावैद्युत अधःस्तर (Dielectric substrate) पर स्याही/पेंट का निक्षेपण (Deposition), इसकी एकरूपता, मोटाई, और इसके आसंजन (Adhesion) आदि के संबंध में अत्यन्त परिशुद्धता (Accuracy) आवश्यक होती है । यहां पर स्याही-प्रतिरोधकता (Ink resistivity) एक बहुत निर्णायक मापदण्ड है जो माइक्रोवेव अवशोषकों के निर्माण में इसके प्रयोग को सीमित करता है। यद्यपि अनुसंधान के लिए यह नए आयाम उपलब्ध कराता है जहाँ वर्तमान स्क्रीन प्रिंटिंग तकनीक के तहत मानक अधःस्तर (Standard substrate) पर वांछित प्रतिरोधकता वाली स्याही का विनिर्माण किया जा सके।

एक अन्य प्रकार का मेटा-मैटेरियल अवशोषक, परावैद्युत अधःस्तर पर प्रतिरोधी पर्णिका (Resistive film) को मुद्रित

करके प्राप्त किया जाता है। पर्णिका (Film) का सतही प्रतिरोध बहुत अधिक होता है, जो ओह्मिक हानि के कारण आपतित विद्युत चुम्बकीय तरंग (EM wave) को अवशोषित करता है। व्यावसायिक रूप से उपलब्ध प्रतिरोधक शीट (Resistive sheet) में सटीक मोटाई एवं सतही प्रतिरोध होने के कारण ये स्याही आधारित अवशोषक की प्रतिबंधता को दूर करते हैं। यहाँ आवर्ती नमूनों (Periodic pattern) को प्रतिरोधक शीट पर एक्ज़ाइमर लेजर के उपयोग से माइक्रो-मशीनिंग द्वारा उत्पन्न किया जाता है। व्यावसायिक रूप से बाजार में उपलब्ध होने और साथ ही कम लागत का होने के कारण आमतौर पर इंडियम-टिन-ऑक्साइड (ITO) आधारित प्रतिरोधक शीट का उपयोग किया जाता है। भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान कानपुर स्थित हमारे अनुसंधान-दल द्वारा कई माइक्रोवेव अवशोषक तैयार किए हैं जो आईटीओ आधारित प्रतिरोधक शीट का उपयोग करते हुए विविध रडार आवृत्ति बैण्ड्स को समाहित करते हैं। बेहतरीन यांत्रिक लचीलापन और प्रकाशकीय पारदर्शिता (Optical transparency), आईटीओ आधारित प्रतिरोधक शीट की कुछ अन्य आकर्षक विशेषताए हैं, जिनका उपयोग सौर सेल, पारदर्शी एंटीना, आरएफआईडी प्रणाली और स्पर्श पैनल नियंत्रण (Touch panel controls) जैसे विभिन्न व्यावहारिक अनुप्रयोगों में देखने को मिलता हैं।

प्रतिरोधी स्याही अथवा लंप्ड प्रतिरोध आधारित अवशोषक, माइक्रोवेव का अवशोषण तो करते हैं किन्तु अपारदर्शी अवयवों (Opaque elements) जैसे कि धातु/प्रतिरोधी नमूने, ग्राउंड प्लेट अथवा परावैद्युत अधःस्तर आदि के कारण दृश्य-प्रकाश आवृत्तियों (Optical frequency) के लिए पारदर्शी नहीं होते। इसके विपरीत आईआईटी कानपुर के दल ने ऐसे माइक्रोवेव अवशोषक निर्मित करने में सफलता प्राप्त की है जो दृश्य-प्रकाश के लिए पारदर्शी हैं और इनके वैद्युतीय गुणधर्म (Electrical properties) अद्वितीय प्रकृति के हैं। यह अवशोषक दृश्य-प्रकाश को तो अपने में से होकर गुजरने देता है किन्तु माइक्रोवेव आवृत्ति की विद्युत चुम्बकीय तरंग को अवशोषित कर लेता है। इस प्रकार का एक प्रारूप चित्र-3 में दर्शाया गया है जो दृश्य-प्रकाश आवृत्तियों के लिए 82% से अधिक पारदर्शिता (Transparency) साथ ही 4 से 15 गीगाहर्ट्ज के आवृत्ति-विस्तार में माइक्रोवेव अवशोषण उपलब्ध कराता है। इसमें ऊपरी प्रतिरोधक पैटर्न और नीचे की ग्राउन्ड सतह दोनों को ही आईटीओ शीट का प्रयोग करके निर्मित किया गया है जबकि परावैद्युत अंतरक (Dielectric spacer) के रूप में वायु का प्रयोग किया गया है। पारदर्शी ब्रॉडबैन्ड माइक्रोवेव अवशोषक की इस अवधारणा का प्रकाशन विश्व में पहली बार हुआ है। इस प्रकार के अवशोषकों का उपयोग विमानों की केनोपी, इसकी खिड़कियों के विद्युत चुम्बकीय परिरक्षण (EM shielding) एवं विविध इलेक्ट्रानिक परिपथों के संवेष्टन (Packaging) में किया जाता है।

अधिकांश मेटा मैटेरियल अवशोषक आमतौर पर समतल होते हैं, तथा इनका उपयोग वक्रीय सतहों (Curved surface) पर नहीं किया जा सकता। हमने यहां पर कुछ ऐसे अवशोषकों की भी खोज की है जो वांछित प्रकृति के होने के साथ-साथ वक्र सतहों पर भी आसानी से उपयोग किए जा सकते हैं। मेटा मैटेरियल अवशोषक में परावैद्युत अंतरक (Dielectric spacer) आमतौर पर अपारदर्शी प्रकृति का होता है और इसलिए समग्र अवशोषक को दृश्य-प्रकाश के लिये पारदर्शी (Optically transparent) बनाने हेतु परावैद्युत अंतरक को भी पारदर्शी होना चाहिए। आमतौर पर कांच अथवा ऐक्रेलिक आधारित परावैद्युत अंतरक पारदर्शी होते हैं परन्तु यह यांत्रिक रूप से लचीले नहीं होते हैं। यहाँ आईआईटी कानपुर के दल ने दृश्य-प्रकाश के लिये पारदर्शी साथ ही यांत्रिक रूप से लचीले परावैद्युत अंतरक भी प्रारूपित और निर्मित कर लिए है। (चित्र-4), जिनका प्रयोग दृश्य-प्रकाश पारदर्शी माइक्रोवेव अवशोषकों के विकास में किया जा सकता है। दल ने अभी हाल ही में ऐसे कई अवशोषकों को विकसित किया है।

इसके अतिरिक्त हमने कुछ कपड़ा-आधारित मेटा मैटेरियल अवशोषकों को भी विकसित किया है, जिसमें सूती कपड़ों, कैनवास, और सेना की वर्दियों जैसे विभिन्न प्रकार के कपड़ों पर प्रतिरोधक स्याही मुद्रित की जाती है। ये कपड़ा अवशोषक (Textile absorbers) उस आवृत्ति-विस्तार में विस्तृत-पट्ट अवशोषण (Broadband absorption) उपलब्ध कराते हैं जहां उन्नत किस्म के युद्धक्षेत्र रडार और भूतलीय गति संवेदक (Motion detecting ground sensor) संचालित होते हैं। मेटा मैटेरियल्स का यह विकास, हेलमेट, सेना की वर्दी, टैंकों के

अवशोषण (Broadband absorption) उपलब्ध कराते हैं जहां उन्नत किस्म के युद्धक्षेत्र रडार और भूतलीय गति संवेदक (Motion detecting ground sensor) संचालित होते हैं। मेटा मैटेरियल्स का यह विकास, हेलमेट, सेना की वर्दी, टैंकों के ऊपरी आवरण, बख्तरबंद गाड़ियों और अन्य वाहनों में भी इसके समावेश को सुनिश्चित करता है।

उल्लिखित समस्त अनुसंधान कार्य को प्रोफेसर कुमार वैभव श्रीवास्तव (विद्युत अभियांत्रिकी), प्रोफेसर एस अनंथा रामकृष्ण (भौतिकी) एवं प्रोफेसर जे राम कुमार (यांत्रिक अभियांत्रिकी विभाग) के द्वारा संयुक्त रूप से निष्पादित किया गया है। इनमें से कुछ कार्यों में डीआरडीओ एवं विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी विभाग द्वारा भी सहयोग दिया गया है।

संक्षिप्ततः मेटा-मैटेरियल आधारित अवशोषक वजन के साथ-साथ अवशोषक की मोटाई को भी उल्लेखनीय रूप से घटाते हैं, जो पारंपरिक फेराइट आधारित अवशोषकों के प्रमुख दोष हुआ करते थे। इसके अतिरिक्त इनके कई और लाभ यथा वृहद्-पट्ट (Broadband), वांछित आकार और इनका मितव्ययी होना भी हैं। कुछ स्थितियों में माइक्रोवेव अवशोषक दृष्टिगत रूप से पारदर्शी भी हो सकते हैं। मेटा मैटेरियल अवशोषक पर हमारा शोध कार्य अच्छी प्रगति कर रहा है किन्तु साथ इसके कुछ गुण-दोष भी जुड़े हुए हैं। हम अपने शोध को एक उत्पाद के रूप में बाजार में लाने के लिए रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन (डीआरडीओ) के गहन-सान्निध्य में कार्य कर रहे हैं। इनमें से कुछ पर तो परीक्षण चल रहा है जबकि अन्य पर रक्षाधिकारियों द्वारा प्रदत्त कुछ विशिष्ट विनिर्देशों के आधार पर और अधिक शोध किए जाने की आवश्यकता है।

एक ग्रीक दार्शनिक हेराक्लिटस के अनुसार "केवल एक चीज ही सतत है, और वह है परिवर्तन।" प्रौद्योगिकी का क्षेत्र हमेशा परिवर्तनशील होता है विशेष रूप से युद्ध का क्षेत्र। उन्नत किस्म के शृंखलाबद्ध-फेज़ रडार एवं डॉपलर रडारों ने आज द्वितीय विश्व युद्ध के समय के आरंभिक रडारों का स्थान ले लिया है। बमवर्षक एवं गुप्त लड़ाकू विमानों (Stealth fighter planes) ने पुराने जमाने के ध्यानाकर्षी एवं भयावह विमानों का स्थान ले लिया है। जैसे-जैसे रडार की संवेदनशीलता में वृद्धि होती गई, वैसे-वैसे अवशोषक अनुसंधान-कर्ताओं की निपुणता में भी वृद्धि होती गयी। चूहे और बिल्ली का कभी न ख़त्म होने वाला यह खेल शायद स्वयं जंग की समाप्ति तक चलता ही रहेगा।

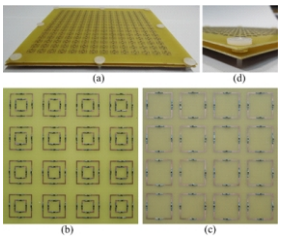

चित्र -1: लंप्ड प्रतिरोधों (Lumped resistor) के प्रयोग से निर्मित बहुपर्तीय(Multilayered) माइक्रोवेव अवशोषक (अ) सम्पूर्ण अवलोकन (Complete view) (ब) अभिवर्धित शिरोवलोकन (Enlarged top view) (स) अभिवर्धित पादावलोकन (Enlarged bottom view) (द) सहायक नट-बोल्ट फ्रेम के साथ वायु-स्पेसर

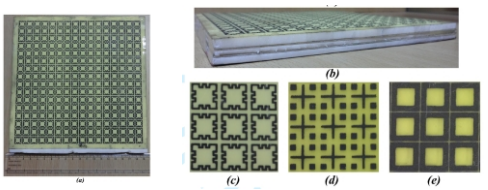

चित्र -2: प्रतिरोधी स्याही (Resistive ink) से निर्मित बहुपर्तीय ब्रॉड-बैंड माइक्रोवेव अवशोषक (अ) शिरोवलोकन (Top view) (ब) प्रष्टावलोकन (Side view) (स) परिवर्धित (Enlarged) शिरोवलोकन (द) परिवर्धित मध्य पर्त (इ) परिवर्धित पादावलोकन

चित्र -3: दृष्टिगत रूप से पारदर्शी (Optically transparent) माइक्रोवेव अवशोषक

चित्र -4: वांछित आकार के माइक्रोवेव अवशोषक के निर्माण हेतु दृष्टिगत रूप से पारदर्शी (Optically transparent) परावैद्युत अंतरक (Dielectric spacer)

प्रोफेसर कुमार वैभव श्रीवास्तव
(विद्युत अभियांत्रिकी)

प्रोफेसर एस अनंथा रामकृष्ण
(भौतिकी)

प्रोफेसर जे राम कुमार
(यांत्रिक अभियांत्रिकी विभाग)

अनुवाद- सोमनाथ डनायक एवं जगदीश प्रसाद

बहुभाषिकता की दृष्टि से भारत विश्व भर में संभवतः सर्वाधिक विविधताओं वाला देश है। भिन्न भाषा-भाषियों के बीच परस्पर संवाद के लिए अलग-अलग स्तरों पर कोई-न-कोई भाषा संपर्क भाषा की जिम्मेदारी निभाती दिखाई देती है। इतिहास साक्षी है कि देश में आर्य तथा अनार्य भाषा बोलने वाले लोगों के बीच कम-से-कम भाषा को लेकर कोई विवाद नहीं रहा है । हाँ, निजी स्वार्थों की पूर्ति तथा वर्चस्व के लिए कतिपय लोगों ने अपनी भाषा को ऊँचा दिखाने की कोशिश की किन्तु देश की साधारण जनता ने उनके इरादों पर पानी फेर दिया, देश की यही साधारण जनता ने जो अपनी अभिव्यक्ति अपनी भाषा या बोली में करने के साथ-साथ दूसरी भाषाओं का सम्मान करना नहीं भूलती । देश में बोली जानी वाली भाषाओं तथा बोलियों का स्वयं का इतिहास रहा है जो भारत की गौरवशाली भाषिक एकता को दर्शाता है। भाषिक एकता के बल पर देश की एकता को और अधिक सुदृढ़ बनाने का सदैव प्रयास होते रहना चाहिए । इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए हम 'अंतस' के इस अंक में एक और मीठी जुबान को स्थान देने जा रहे हैं जो स्वयं कहती है-"जहाँ जहाँ कोई उर्दू ज़बान बोलता है, वहीं वहीं मेरा हिन्दोस्तान बोलता है।" भाषा-विमर्श स्तम्भ के माध्यम से हम आपका परिचय उर्दू के भाषा-परिवार, इतिहास, वर्णमाला, लिपि तथा साहित्य से कराने जा रहे हैं ।

भाषा-परिवार एवं इतिहासः उर्दू भाषा हिन्द आर्य भाषा है तथा यह हिन्दुस्तानी भाषा की एक मानकीकृत रूप मानी जाती है । इसका विकास मध्ययुग में उत्तरी भारत के उस क्षेत्र में हुआ जिसमें आज पश्चिमी उत्तर प्रदेश, दिल्ली और पूर्वी पंजाब सम्मिलित हैं। इसका आधार उस प्राकृत और अपभ्रंश पर था जिसे शौरसेनी कहते थे और जिससे खड़ी बोली, ब्रजभाषा, हरियाणवी एवं पंजाबी आदि ने जन्म लिया था। मुसलमानों के भारत में आने और पंजाब एवं दिल्ली में बस जाने के कारण इस प्रदेश की बोलचाल की भाषा में फारसी और अरबी शब्द भी सम्मिलित होने लगे और धीरे-धीरे उसने एक पृथक रूप धारण कर लिया । पश्चिमी उत्तर प्रदेश और दिल्ली में बोलचाल में खड़ी बोली का प्रयोग होता था। उसी के आधार पर बाद में उर्दू का साहित्यिक रूप निर्धारित हुआ। इसमें काफी समय लगा, अतः देश के कई भागों में थोड़े-थोड़े अंतर के साथ इस भाषा का विकास अपने-अपने ढंग से हुआ। उर्दू का मूल आधार तो खड़ी बोली ही है किंतु दूसरे क्षेत्रों की बोलियों का प्रभाव भी उस पर पड़ता रहा। आरंभ में सूफी-फकीर देश के विभिन्न भागों में घूम-घूमकर उर्दू में अपने विचारों का प्रचार करते थे। इसी कारण इस भाषा के लिए कई नामों का प्रयोग हुआ है। अमीर खुसरो ने इसको "हिंदी", "हिंदवी" अथवा "ज़बाने देहलवी" कहा था; दक्षिण में पहुँची तो "दकिनी" या "दक्खिनी" कहलायी । जब कविता और विशेषतया गजल के लिए इस भाषा का प्रयोग होने लगा तो इसे "रेख्ता" (मिली-जुली बोली) कहा गया।

वर्णमाला एवं लिपिः उर्दू में मुख्यतः 35 हर्फ़(उर्दूजबान में वर्णों को हर्फ़ बोलते हैं) होते हैं जो क्रमबद्ध तरीके से नीचे दिए गए हैं-

ا	अलिफ़	Alif
ب	बे	Bey
پ	पे	Pey
ت	ते	Tey
ٹ	टे	Teh
ث	से	Sey
ج	जीम	Jeem
چ	चे	Chey
ح	हे	Hey
خ	ख़े	Khay
د	दाल	Dal
ڈ	डाल	Daal
ذ	ज़ाल	Jaal
ڈ	ड़े	Dey
ز	ज़े	Zey
ژ	ज़े	Zey
س	सीन	Seen
ش	शीन	Sheen
ش	स्वाद	Swad
ض	ज़्वाद	Zwad
ط	तोय	Toy
ظ	ज़ोय	Zoy
ع	ऐन	Ayen
غ	गैन	Gyen
ف	फ़े	Fey
ق	छोटा काफ़	Kaaf
ک	बड़ा काफ़	Kaaf
گ	गाफ़	Gaaf
ل	लाम	Laam
م	मीम	Meem
ن	नून	Noon
و	वाव	Waw
ہ	है	Hey
ء	हमज़ा	Hamza
ی	छोटी ये	Choti Ye
ے	बड़ी ये	Badi Ye

उर्दू नस्तालीक़ लिपि में लिखी जाती है जो फ़ारसी-अरबी लिपि का एक रूप है । उर्दू दायें से बायें लिखी जाती है।

साहित्यः उर्दू साहित्य की नींव अमीर खुसरो (1255-1325) ने डाली, जिन्होंने इस भाषा को देहलवी या हिन्दवी कहा था। फारसी के इस प्रसिद्ध शायर ने हिन्दवी में पहेलियां, दोहे, चौपाइयां और शेर लिखे। उन्होंने ऐसी गजलें भी लिखी थीं जिनमें एक बोल तो फारसी का है और दूसरा हिन्दवी का। कुतुबुद्दीन ऐबक एवं अन्य सूफियों ने धर्म प्रचार के लिए उर्दू का ही प्रयोग किया क्योंकि स्थानीय लोगों तक पहुंच के लिए यही भाषा उपयुक्त थी। अलाउद्दीन खिलजी के गुजरात और दक्कन पर विजय पाने के बाद सूफियों के माध्यम से उधर भी हिन्दवी पहुंची। ख्वाजा गेसू दराज ने मेराजुल आशिकीं लिखी जो उर्दू की गद्य की पहली पुस्तक बनी। सूफियों का फैलाव पूरे देश में होने के कारण उर्दू या हिन्दवी पूरे देश में फैली। 1490 तक दक्षिण भारत के बीजापुर तथा 1518 तक गोलकुंडा उर्दू के केन्द्र बन गये थे। मुगल शासन में हिन्दवी में फारसी के शब्द बड़ी संख्या में आये तथा हिन्दवी के विकास के साथ ही इस भाषा का नाम रेखता पड़ गया। यह रेखता शाहजहां के शासनकाल में उर्दू कही जाने लगी। उर्दू साहित्य का अगला दौर मीर, सौदा, दर्द आदि शायरों के साथ आया। यह दौर उर्दू साहित्य का स्वर्णयुग बन गया। मिर्जा गालिब ने उर्दू काव्य को दार्शनिक स्तर तक पहुंचाया। गालिब (1797-1869) का बड़ा योगदान रहा। उन्होंने भावना और आध्यात्मिक विचारों के अतिरिक्त दार्शनिक तत्वों को अपने गजल में शामिल किया।1857 के भारत के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की विफलता के बाद की सामाजिक स्थितियां बदलीं तथा अंग्रेजों और अंग्रेजी का प्रभुत्व बढने से उर्दू साहित्य पर भी इसका प्रभाव पड़ा। सर सैयद अहमद खां (1817-1895) ने अलीगढ़ साइंटिफिक सोसाइटी का गठन कर उर्दू में साहित्य सृजन को आगे बढ़ाया। भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन में उर्दू साहित्य का काफी योगदान रहा। इस दौर में इकबाल (1875-1938), जोश, जफर अली खां आदि जैसे बड़े कवि हुए। बड़ी संख्या में अंग्रेजी शासन के विरुद्ध साहित्य लिखे गये। भारत की स्वतंत्रता की घोषणा के बाद भारत और पाकिस्तान विभाजन का असर उर्दू के लेखकों और कवियों पर पड़ा। उन्होंने दंगे के विरोध में बेहतरीन साहित्य की रचना की। इस दौर के प्रमुख उर्दू रचनाकार हैं- कृष्ण चन्दर, मंटो, ख्वाजा अहमद अब्बास, इस्मत चुगताई, जोश, सरदार जाफरी, वामिक आदि।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद उर्दू साहित्य का नया दौर चला। आधुनिकता, अत्याधुनिकता और उत्तर आधुनिकता का प्रकटीकरण इस दौर का प्रमुख रूझान है।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि उर्दू का देश की अन्य भाषाओं और विशेष रूप से हिन्दी के साथ अटूट रिश्ता रहा है । भले ही राजनैतिक अथवा अन्य कारणों से उर्दू तथा हिन्दी के बीच में अंतर पैदा करने की कोशिश की जाती है लेकिन उर्दू का यह शेर "हिन्दी में उर्दू में फ़र्क़ है तो इतना, वो ख़्वाब देखते हैं हम देखते हैं सपना" बहुत कुछ बयाँ कर देता है। अपनी भाषा से इतर उर्दू भाषा सीखने के इच्छुक व्यक्तियों के लिए देश के विभिन्न स्थानों पर औपचारिक साधनों यथा स्कूल, महाविद्यालयो, विश्वविद्यालयों आदि की व्यवस्था है। इसके अलावा इंटरनेट, सोशल मीडिया आदि में उर्दू सीखने के लिए अनेक साधन उपलब्ध हैं। भाषायी आदान-प्रदान से लोगों के बीच आपसी समन्वय एवं भाई-चारे की भावना को मजबूती मिलती है जिससे देश की प्रगति होती है। इस प्रकार भाषा-यात्रा का तीसरा पड़ाव यहीं समाप्त होता है। अगले अंक में एक और भारतीय भाषा के साथ आपसे पुनः मिलेंगें, तब तक के लिए ख़ुदा हाफ़िज़ – शब्बा ख़ैर।

राजभाषा प्रकोष्ठ

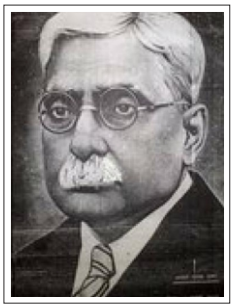

रामचन्द्र शुक्ल का जन्म 4 अक्टूबर 1884 को बस्ती अगोना गाँव, ज़िला बस्ती, उत्तरप्रदेश में हुआ था। 1898 में आपने मिडिल की परीक्षा उत्तीर्ण की व 1901 में मिर्ज़ापुर से एंट्रेंस की। आपकी एफ ए मुख़्तारी की पढ़ाई पूरी ने हो सकी। आपने अपनी पहली नौकरी 1904 में मिशन स्कूल में ड्रांइग मास्टर के रूप में की। आपने आनंद कादंबनी का संपादन भी लिया। 1908 में आप नागरी प्रचारणी सभा के हिंदी कोश के लिए सहायक संपादक के रूप में काशी गए।

अनुभूति के द्वन्द्व से ही प्राणी के जीवन का आरम्भ होता है। उच्च प्राणी मनुष्य भी केवल एक जोड़ी अनुभूति लेकर इस संसार में आता है। बच्चे के छोटे से हृदय में पहले सुख और दुख की सामान्य अनुभूति भरने के लिए जगह होती है। पेट का भरा या खाली रहना ही ऐसी अनुभूति के लिए पर्याप्त होता है। जीवन के आरम्भ में इन्हीं दोनों के चिन्ह हँसना और रोना देखे जाते हैं पर ये अनुभूतियाँ बिल्कुल सामान्य रूप में रहती हैं, विशेष-विशेष विषयों की ओर विशेष-विशेष रूपों में ज्ञानपूर्वक उन्मुख नहीं होतीं।

नाना विषयों के बोध का विधान होने पर ही उनसे संबंध रखने वाली इच्छा की अनेकरूपता के अनुसार अनुभूति के भिन्न-भिन्न योग संघटित होते हैं जो भाव या मनोविकार कहलाते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि सुख और दुख की मूल अनुभूति ही विषय-भेद के अनुसार प्रेम, ह्रास, उत्साह, आश्चर्य, क्रोध, भय, करुणा, घृणा इत्यादि मनोविकारों का जटिल रूप धारण करती है। जैसे यदि शरीर में कहीं सुई चुभने की पीड़ा हो तो केवल सामान्य दुख होगा; पर यदि साथ ही यह ज्ञात हो जाय कि सुई चुभानेवाला कोई व्यक्ति है तो उस दुख की भावना कई मानसिक और शारीरिक वृत्तियों के साथ संश्लिष्ट होकर उस मनोविकार की योजना करेगी जिसे क्रोध कहते हैं। जिस बच्चे को पहले अपने ही दुख का ज्ञान होता था, बढ़ने पर असंलक्ष्यक्रम अनुमान-द्वारा उसे और बालकों का कष्ट या रोना देखकर भी एक विशेष प्रकार का दुख होने लगता है जिसे दया या करुणा कहते हैं। इसी प्रकार जिस पर अपना वश न हो ऐसे कारण से पहुँचने वाले भावी अनिष्ट के निश्चय से जो दुख होता है वह भय कहलाता है। बहुत छोटे बच्चे को , जिसे यह निश्चयात्मिका बुद्धि नहीं होती, भय कुछ भी नहीं होता। यहाँ तक कि उसे मारने के लिए हाथ उठाये तो भी वह विचलित न होगा, क्योंकि वह निश्चय नहीं कर सकता कि इस हाथ उठाने का परिणाम दुख होगा।

मनोविकारों या भावों की अनुभूतियाँ परस्पर तथा सुख या दुख की मूल अनुभूति से ऐसी ही भिन्न होती हैं जैसे रासायनिक मिश्रण परस्पर तथा अपने संयोजक द्रव्यों से भिन्न होते हैं। विषय-बोध की विभिन्नता तथा उससे संबंध रखने वाली इच्छाओं की विभिन्नता के अनुसार मनोविकारों की अनेकरूपता का विकास होता है। हानि या दुख के कारण में हानि या दुख पहुँचाने की चेतन वृत्ति का पता पाने पर हमारा काम उस मूल अनुभूति से नहीं चल सकता जिसे दुख कहते हैं, बल्कि उसके योग से संघटित क्रोध नामक जटिल भाव की आवश्यकता होती है। जब हमारी इन्द्रियाँ दूर से आती हुई क्लेशकारिणी बातों का पता देने लगती हैं, जब हमारा अन्तःकरण हमें भावी आपदा का निश्चय कराने लगता है, तब हमारा काम दुख मात्र से नहीं चल सकता बल्कि भागने या बचने की प्रेरणा करने वाले भय से चल सकता है। इसी प्रकार अच्छी लगने वाली वस्तु या व्यक्ति के प्रति जो सुखानुभूति होती है उसी तक प्रयत्नवान प्राणी नहीं रह सकता, बल्कि उसकी प्राप्ति, रक्षा या संयोग की प्रेरणा करने वाले लोभ या प्रेम के वशीभूत होता है।

अपने मूल रूपों में सुख और दुख दोनों की अनुभूतियाँ कुछ बँधी हुई शारीरिक क्रियाओं की ही प्रेरणा प्रवृत्ति के रूप में करती हैं। उनकी भावना, इच्छा और प्रयत्न की अनेकरूपता का स्फुरण नहीं होता। विशुद्ध सुख की अनुभूति होने पर हम बहुत करेंगे-दाँत निकाल कर हँसेंगे, कूदेंगे या सुख पहुँचाने वाली वस्तु से लगे रहेंगे, इसी प्रकार शुद्ध दुख में हम बहुत करेंगे-हाथ-पैर पटकेंगे, रोयेंगे या दुख पहुँचाने वाली वस्तु से हटेंगे-पर हम चाहे कितना ही उछल-कूदकर हँसें, कितना ही हाथ-पैर पटककर रोयें, इस हँसने या रोने को प्रयत्न नहीं कह सकते। ये सुख और दुख के अनिवार्य लक्षण मात्र हैं जो किसी प्रकार की इच्छा का पता नहीं देते। इच्छा के बिना कोई शारीरिक क्रिया प्रयत्न नहीं कहला सकती।

शरीर-मात्र धर्म के प्रकाश से बहुत थोड़े भावों की निर्दिष्ट और पूर्ण व्यंजना हो सकती है। उदाहरण के लिए कम्प को लीजिए कम्प शीत की संवेदना से भी हो सकता है, भय से भी, क्रोध से भी और प्रेम के वेग से भी। अतः जब तक भागना, छिपना या मारना, झपटना इत्यादि प्रयत्नों के द्वारा इच्छा के स्वरूप का पता न लगेगा तब तक भय या क्रोध की सत्ता पूर्णतया व्यक्त न होगी। सभ्य जातियों के बीच इन प्रयत्नों का स्थान बहुत कुछ शब्दों ने

लिया है। मुँह से निकले हुए वचन ही अधिकतर भिन्न-भिन्न प्रकार की इच्छाओं का पता देकर भावों की व्यंजना किया करते हैं। इसी से साहित्य-मीमांसकों नें अनुभव के अन्तर्गत आश्रय की उक्तियों को विशेष स्थान दिया है।

क्रोधी चाहे किसी ओर झपटे या न झपटे, उसका यह कहना है कि मैं उसे पीस डालूँगा, क्रोध की व्यंजना के लिए काफी होता है। इसी प्रकार लोभी चाहे लपके या न लपके, उसका कहना ही कि कहीं वह वस्तु हमें मिल जाती, उसके लोभ का पता देने के लिए बहुत है। वीर रस की जैसी अच्छी और परिष्कृत अनुभूति उत्साहपूर्ण उक्तियों द्वारा होती है वैसी तत्परता के साथ हथियार चलाने और रणक्षेत्र में उछलने-कूदने के वर्णन में नहीं। बात यह है कि भावों द्वारा प्रेरित प्रयत्न या व्यापार परिमित होते हैं। पर वाणी के प्रसार की कोई सीमा नहीं। उक्तियों में जितनी नवीनता और अनेकरूपता आ सकती है या भावों का जितना अधिक वेग व्यंजित हो सकता है उतना अनुभव कहलाने वाले व्यापारों द्वारा नहीं। क्रोध के वास्तविक व्यापार तोड़ना-फोड़ना, मारना-पीटना इत्यादि ही हुआ करते हैं, पर क्रोध की उक्ति चाहे जहाँ तक बढ़ सकती है। किसी को धूल में मिला देना, चटनी कर डालना, किसी का घर खोदकर तालाब बना डालना तो मामूली बात है। यही बात सब भावों के संबंध में समझिए।

समस्त मानव-जीवन के प्रवर्तक भाव या मनोविकार ही होते हैं। मनुष्य की प्रवृत्तियों की तह में अनेक प्रकार के भाव ही प्रेरक के रूप में पाये जाते हैं। शील या चरित्र का मूल भी भावों के विशेष प्रकार के संगठन में ही समझना चाहिए। लोक-रक्षा और लोक रंजन की सारी व्यवस्ता का ढाँचा इन्हीं पर ठहराया गया है। धर्म-शासन, राज-शासन, मत-शासन सबमें इनसे पूरा काम लिया गया है। इनका सदुपयोग भी हुआ है और दुरुपयोग भी। जिस प्रकार लोक-कल्याण के व्यापक उद्देश्य की सिद्धि के लिए मनुष्य के मनोविकार काम में लाये गये हैं उसी प्रकार किसी सम्प्रदाय या संस्था के संकुचित और परिमित विधान की सफलता के लिए भी।

सब प्रकार के शासन में चाहे धर्म-शासन हो, चाहे राज-शासन, या सम्प्रदाय-शासन-मनुष्य-जाति के भय और लोभ से पूरा काम लिया गया है। दण्ड का भय और अनुग्रह का लोभ दिखाते हुआ राज-शासन तथा नरक या भय और स्वर्ग का लोभ दिखाते हुए धर्म-शासन और मत-शासन चलते आ रहे हैं। इनके द्वारा भय और लोभ का प्रवर्तन उचित सीमा के बाहर भी प्रायः हुआ है और होता रहता है। जिस प्रकार शासक वर्ग अपनी रक्षा और स्वार्थ-सिद्धि के लिए भी इनसे काम लेते आये हैं उसी प्रकार धर्म-प्रवर्तक और आचार्य आपके स्वरूप वैचित्र्य की रक्षा और अपने प्रभाव की प्रतिष्ठा के लिए भी। शासक वर्ग अपने अन्याय और अत्याचार के विरोध की शान्ति के लिए भी डराते और ललचाते आये हैं। मत प्रवर्तक अपने द्वेष और संकुचित विचारों के प्रचार के लिए भी जनता को कँपाते और लपकाते आये हैं। एक जाति को मूर्ति-पूजा करते देख दूसरी जाति के मत प्रवर्तक ने उसे गुनाहों में दाखिल किया है। एक सम्प्रदाय को भस्म और रुद्राक्ष धारण करते देख दूसरे सम्प्रदाय के प्रचारक ने उसके दर्शन तक में पाप लगाया है। भाव क्षेत्र अत्यन्त पवित्र क्षेत्र है। उसे इस प्रकार गन्दा करना लोक के प्रति भारी अपराध समझना चाहिए।

शासन की पहुँच प्रवृत्ति और निवृत्ति की बाहरी व्यवस्था तक ही होती है। उनके मूल या मर्म तक उनकी गति नहीं होती। भीतरी या सच्ची प्रवृत्ति-निवृत्ति को जागरित रखने वाली शक्ति कविता है जो धर्म-क्षेत्र में शक्ति भावना को जगाती रहती है। भक्ति धर्म की रसात्मक अनुभूति है। अपने मंगल और लोक के मंगल का संगम उसके भीतर दिखाई पड़ता है। इस संगम के लिए प्रकृति के क्षेत्र के बीच मनुष्य को अपने हृदय के प्रसार का अभ्यास करना चाहिए। जिस प्रकार ज्ञान नर सत्ता के प्रसार के लिए है उसी प्रकार हृदय भी। रागात्मिका वृत्ति के प्रसार के बिना विश्व के साथ जीवन का प्रकृत सामंजस्य घटित नहीं हो सकता। जब मनुष्य के सुख और आनन्द का मेल शेष प्रकृति के सुख-सौन्दर्य के साथ हो जायेगा, जब उसकी रक्षा का भाव तृणगुल्म, वृक्ष-लता, पशु-पक्षी, कीट-पतंग, सबकी रक्षा के भाव के साथ समन्वित हो जायेगा, तब उसके अवतार का उद्देश्य पूर्ण हो जायेगा और वह जगत का सच्चा प्रतिनिधि हो जायेगा। काव्य योग की साधना इसी भूमि पर पहुँचाने के लिए है। सच्चे कवियों की वाणी बराबर पुकारती आ रही है- विधि के बनाये जीव जेते हैं जहाँ के तहाँ खेलत फिरत तिन्हें खेलन फिरन देव। ठाकुर

आभार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

अंग्रेजी में स्केच का हिंदी पर्याय रेखाचित्र है। हिंदी में रेखाचित्र नामक जिस साहित्यिक विधा का उद्भव और विकास हुआ, उसके उदाहरण अंग्रेजी या अन्य यूरोपीय साहित्य में उपलब्ध नहीं हैं। कुछ व्यक्तियों, साहित्यकारों, राजनेताओं, वैज्ञानिकों आदि के बारे में संस्मरणात्मक कृतियाँ अंग्रेजी या यूरोपीय साहित्य में मिल जाती हैं, पर रेखाचित्र या स्केच नहीं मिलते। दरअसल हिंदी में इस साहित्यिक कला का आविर्भाव चित्रकला में प्रचलित रेखांकन और पोर्ट्रेट के आधार पर हुआ है। इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका में भी अंग्रेजी साहित्य की एक साहित्यिक विधा के रूप में स्केच का कोई जिक्र नहीं है, पर चित्रकला के इतिहास के अंतर्गत पोर्ट्रेट का जिक्र अवश्य है।

कहानी और निबंध के बीच झूलती रेखाचित्र सर्वथा एक नई विधा है। इसकी सफलता शब्दों और वाक्यों के कुशल संगुंफन पर निर्भर करती है। जब चित्रकला का यह शब्द साहित्य में आया तो इसकी परिभाषा भी स्वभावतः इसके साथ आई। स्केच की ही तरह रेखाचित्र में भी कम से कम शब्दों में कलात्मक ढ़ंग से किसी वस्तु, व्यक्ति या दृश्य का अंकन किया जाता है। इसमें साधन शब्द होते हैं, रेखाएं नहीं। इसीलिए इसे शब्द चित्र भी कहते हैं। कहीं-कहीं इसका अंग्रेजी नाम स्केच भी व्यवहृत होता है।

रेखाचित्र किसी व्यक्ति, वस्तु, घटना या भाव का कम से कम शब्दों में मर्मस्पर्शी, भावपूर्ण एवं सजीव अंकन है। रेखाचित्र में वस्तुतः अनेक साहित्यिक विधाओं की तरंगें उठती रहती हैं। इसमें कहानी का कौतूहल है तो निबंध की गहराई, गद्यकाव्य की भावात्मक लयात्मकता है तो डायरी में व्यक्त निश्छल मन की अभिव्यक्ति, संस्मरण की वैयक्तिकता है तो भेंटवार्ता का खुलापन, आत्मकथा-जीवनी, की बेबाकी है तो यात्रावृत्त का सीमित विस्तार, व्यंग्य की छेड़-छाड़ है तो रिपोतार्ज की गुनगुनाहट। विभिन्न साहित्यिक रसों के घोल में घुली ये रेखाएं अंगड़ाई लेकर विशिष्ट चित्रों में ढल जाती है। दूसरे शब्दों में रेखाचित्र विभिन्न विधाओं की विशेषताओं का विचित्र समुच्चय है। गद्यकाव्य से मिलती-जुलती इस विधा में वर्णन का प्राधान्य रहता है और ये वर्णन प्राय संस्मरणों से संबद्ध रहते हैं। अतः एकात्मकता, सरस और मार्मिक शैली, संस्मरणात्मक चित्र, हृदय की संवेदनाशीलता, कल्पना का सौन्दर्य, सूक्ष्म पर्यवेक्षण शक्ति, तीव्रता, संक्षिप्तता, विवरण की न्यूनता आदि रेखाचित्र की प्रमुख विशेषताएं मानी जा सकती हैं।

रेखाचित्र यद्यपि एक नवीन साहित्यिक विधा के रूप में हिंदी साहित्य

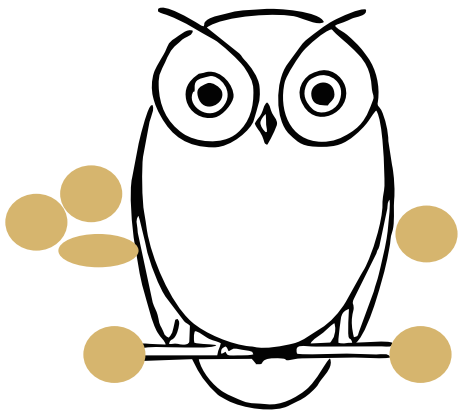

में प्रतिष्ठित हो चुकी है फिर भी आलोचकों ने इसकी शास्त्रीय विवेचना को लेकर कोई गंभीर प्रयास नहीं किया है। इसीलिए रेखाचित्र का स्वरूप निर्धारण आसान कार्य नहीं है। महादेवी वर्मा ने अपने रेखाचित्र संग्रह "अतीत के चलचित्र" में लिखा है-''इन स्मृति चित्रों में मेरा जीवन भी आ गया है। यह स्वाभाविक भी था। अंधेरे की वस्तुओं को हम अपने प्रकाश में धुँधली या उजली परिधि में लाकर ही देख पाते हैं। उसके बाहर तो वे अनंत अंधकार के अंश हैं। मेरे जीवन की परिधि के भीतर खड़े होकर चरित्र जैसे परिचय दे पाते हैं, वह बाहर रूपांतरित हो जाएगा। फिर जिस परिचय के लिए कहानीकार अपने कल्पित पात्रों को वास्तविकता से सजाकर निकट लाता है, उसी परिचय के लिए मैं अपने पथ के साथियों को कल्पना का परिधान पहनाकर दूरी की सृष्टि क्यों करती? परंतु मेरा निकटताजनित आत्मविज्ञापन उस राख से अधिक महत्व नहीं रखता, जो आग को बहुत समय तक सजीव रखने के लिए ही अंगारों को घेरे रहती है। जो इसके पार नहीं देख सकता वह इन चित्रों के हृदय तक नहीं पहुँच सकता।''

इसी प्रकार एक महत्वपूर्ण रेखाचित्रकार रामवृक्ष बेनीपुरी ने 'माटी की मूरतें' नामक अपने रेखाचित्र संग्रह में अपना मंतव्य प्रकट करते हुए लिखा है, "हजारीबाग की सेंट्रल जेल" के एकांत जीवन में अचानक मेरे गाँव और मेरे ननिहाल के कुछ ऐसे लोगों की मूरतें मेरी आँखों के सामने आकर नाचने और मेरी कलम से चित्रण की याचना करने लगीं। उनकी इस याचना में कुछ ऐसा ज़ोर था कि अंततः यह माटी की मूरतें तैयार होकर ही रहीं।

रेखाचित्र न तो संपूर्ण कथा होती है और न किसी पात्र का संपूर्ण जीवनवृत्त। वस्तुतः एक निश्चित दृष्टिकोण से किसी व्यक्ति, पात्र अथवा चरित्र के कुछेक पहलुओं का गतिशील प्रतिबिंब ही, रेखाचित्र का आकार ग्रहण कर लेता है।

हिंदी के रेखाचित्र के रूप में महादेवी वर्मा, रामवृक्ष बेनीपुरी, कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर आदि का अभ्युदय सन् 1930 के बाद होता है। यह वह समय है जब साहित्य के क्षेत्र में यथार्थवादी प्रवृत्तियों का विकास निरंतर नए-नए रूपों में दृष्टिगत होता है। समाज और देश की वास्तविकताओं के बहुरूपी आयामों को लेखन का विषय बनाने की सांस्कृतिक आवश्यकताओं के तहत गद्य में भी नई उद्भावना और प्रयोगशीलता के उदाहरण के रूप में रेखाचित्रों को स्वीकृति मिलने लगी। इनमें नये किस्म का आकर्षण और अनूठापन था और वर्ण्यपात्रों का साक्षात्कार कराने की अद्भुत शक्ति भी। ये ऐसे पात्र थे जो सीधे-सीधे जीवन से उठा लिए गए थे और जिन पर धरती की धूल भी चढ़ी हुई थी। दलित और उत्पीड़ित आम जनता के बीच के ये जाने-पहचाने चेहरे थे जो गद्य की नई कला के फ्रेम में कांट-छांट कर पेश किए गए थे। इन रेखाचित्रों को अविलंब लोकप्रियता मिलने लगी। महादेवी वर्मा द्वारा लिखित अतीत के चलचित्र स्मृति की रेखाएं, आदि तथा रामवृक्ष बेनीपुरी द्वारा लिखित माटी की मूरतें, गेंहूँ और गुलाब, अविस्मरणीय क्लासिक कृतियों के रूप में आज भी याद की जाती हैं। अन्य रेखाचित्रों में बनारसीदास चतुर्वेदी, श्री राम शर्मा, देवेन्द्र सत्यार्थी, कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, सत्यवती मलिक, ओंकार शरद के नाम उल्लेखनीय हैं। हंस, रूपाभ, विशाल भारत, कल्पना, अजंता, और नई धारा आदि पत्रिकाओं का रेखाचित्र के विकास में सराहनीय योगदान रहा है।

आभार सहित
स्रोत-हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, डॉ.अमरनाथ

भारतीय संस्कृति की मिसाल

सम्राट अशोक के राज्य में अकाल पड़ा। उन्होंने कई सदावर्त खुलवा दिये ताकि प्रजा में जिनकी आर्थिक स्थिति ठीक न हो वे अपने लिए नि शुल्क सीधा सामान ले जायें।
एक दिन सदावर्त में लम्बी कतार पूरी होने पर एक शरीर से दुर्बल एवं वृद्ध व्यक्ति आया। सदावर्तवालों ने कहा-अब हम सदावर्त बन्द कर रहे हैं। कल आना।

इतने में एक युवक ने आकर कहा-लम्बी कतार में खड़े रहने की शक्ति न होने से यह वृद्ध छाया में दूर बैठा था। तुम इसको सीधा-सामान दे दो तो अच्छा होगा।

युवक की प्रभावशाली वाणी सुनकर सदावर्त वालों नें उस वृद्ध को सीधा-सामान दे दिया। पाँच-दस सेर जितना आटा, दाल, चावल आदि सामान की गठरी बाँधकर वह वृद्ध कैसे ले जाता? उस युवक ने गठरी बाँधी और अपने सिर पर रख ली एवं वृद्ध के साथ चलने लगा।

दोनों कुछ आगे बढ़े होंगे कि इतने में सामने से सेना की एक टुकड़ी आयी। टुकड़ी के नायक ने घोड़े से उतर कर वृद्ध के साथ चल रहे युवक को अभिवादन किया। यह देखकर वृद्ध चौंक उठा और सोंचने लगा कि यह युवक कौन है? युवक ने टुकड़ी के नायक को संकेत से अपना परिचय देने के लिए मना कर दिया।

वह वृद्ध भी अनुभव सम्पन्न था, जमाना देखा हुआ था। वह समझ गया कि मेरे साथ जो युवक है वह साधारण व्यक्ति नहीं है। उसने स्वयं ही युवक से परिचय पूछा-युवक तुम कौन हो? युवक बोला-आप वृद्ध हैं और मैं युवक हूँ। आपका शरीर दुर्बल है और मेरे शरीर में बल है। मुझ सेवा का अवसर मिला है, उसका लाभ उठा रहा हूँ। बस, इतना ही परिचय काफी है।

लेकिन वह वृद्ध भला कैसे चुप रहता? उस युवक को एकटक देखते-देखते उसने युवक का हाथ पकड़ लिया और अधिकार पूर्ण वाणी में कहा-तुम और कोई नहीं वरन् इस देश के सम्राट अशोक हो न। सम्राट अशोक ने हाँ भर दी।

जो निष्काम कर्म करते हैं और यश नहीं चाहते, यश-कीर्ति तो उनके इर्द-गिर्द ही मँडराती रहती है। इसलिए सेवा, विनम्रता जैसे सदगुणों से अपना जीवन उन्नत करना चाहिए।

नाराज बगुला मां

बहुत समय पहले की बात है। बनारस नगर के राजा के पास एक बहुत खूबसूरत मादा बगुला थी। वह राजा की खास संदेशवाहक थी और राजा की बहुत मदद करती थी। राज्य के जासूसों और राजा के जासूसों और राजा के बीच संपर्क बनाए रखने और संदेश पहुँचाने का काम उसका ही था। बगुले का घोंसला राजसी बगीचे के एक पेड़ पर था। उसमें उसके छोटे-छोटे बच्चे रहते थे। वह अपने बच्चों को बहुत प्यार करती थी। एक बार राजा ने बगुले को कौशल देश के राजा के पास एक संदेश पहुँचाने का कार्य सौंपा। यह संदेश बहुत महत्वपूर्ण था। राजा किसी और पर विश्वास नहीं करता था। इसीलिए इच्छा होने के बावजूद उसे अपने बच्चों को अकेले छोड़ कर जाना पड़ा।

बगुला माँ की गैरमौजूदगी में राजा के छोटे-छोटे राजकुमार बगीचे में खेलने गए। खेलते-खेलते घोंसले तक पहुँच गए। नन्हें-नन्हें बगुलों को देखकर वे बहुत खुश हुए और उनके साथ खेलने लगे। नन्हें बगुला बच्चे बहुत ही नाजुक थे। राजकुमारों की लापरवाही के कारण नीचे गिर गए। बेचारे बगुला-बच्चों ने अपनी जान गंवा दी।

राजा का संदेश पहुँचा कर जब बगुला माँ लौटी। जब उसने अपने नन्हें बच्चों को मरा हुआ देखा तो वह बहुत दुखी हुई। सबसे पूछताछ करने के बाद उसे मालूम हुआ कि राजकुमारों ने उसके बच्चों को मारा है। सुनते ही वह गुस्से से आगबबूला हो गई। उसके मन में बस एक बात गूँज रही थी-बदला! बच्चों के गम में वह सही-गलत समझ नहीं पा रही थी।

बगुला-माँ को कहीं से मालूम हुआ कि पास ही के जंगल में एक शेर रहता है। वह उस शेर के पास गई और अपनी दुखभरी दास्तान सुना कर बोली, मैं चाहती हूँ कि जिस तरह से मेरे खेलते हुए बच्चों को राजकुमारों ने मारा है उसी तरह तुम भी उन्हें मार डालों। जब वे बगीचे में खेल रहे होंगे, इस कार्य को करने का वही समय सही होगा।

लेकिन वह शेर बहुत बुद्धिमान था। उसने बगुले से कहा, “सुनो प्यारी बगुला! मैं तुम्हारा दुख समझ सकता हूँ। तुम्हें अपने बच्चों के मारे जान का बहुत गम है। पर क्या राजकुमारों को मारने से तुम्हारे बच्चे वापस लौट आएंगे बल्कि राजकुमारों को मार कर तुम बहुत बड़ा पाप करोगी। और तुम फिर से बच्चों को जन्म दे सकती हो।”

शेर के मुँह से यह बात सुनकर बगुला माँ को अपनी गलती का एहसास हुआ। उसने शेर को उसकी सलाह के लिए धन्यवाद दिया और वहाँ से उड़कर बहुत दूर चली गई।

संग्रह स्रोत-जातक कथाएं

कार्यालयीन टिप्पणियाँ

मौखिक अनुदेश के अनुसार	As Verbally instructed
प्रतिलिपि सूचना और आवश्यक कारवाई के लिए प्रेषित	Copy forwarded for information and necessary action
रिपोर्ट शीघ्र भिजवाने की व्यवस्था करें।	Discrepancy may be reconciled-Expedite submission of report
वित्तीय सहमति प्रदान करने के लिए	For financial concurrence
को दृष्टि में रखते हुए	Having regard to
यथावधि, यथासमय	In due course
कृपया इसे देख लें	Kindly look into it-
इसे अति आवश्यक समझा जाए	May be treated as urgent

श्रद्धांजलि

अटल दर्पण

निर्मल प्रेम मैं करता नहीं
अहंकार पर नियंत्रण नहीं
क्रोध पर काबू पाता नहीं
समन्वयी आचरण मेरा नहीं

स्वार्थी हूँ मैं
समर्पण से दूर हूँ
साधन से दूर हूँ

बलिदान की हिम्मत नहीं
शत्रुता मन से जाती नहीं
व्यापकता मुझमें नहीं
मैं मेरा के ऊपर उठता नहीं

कायर हूँ मैं
मौत से डरता हूँ
खपने से डरता हूँ

प्रगाढ़ अनुशासन नहीं
नियम मैं पालता नहीं
स्थिर चिंतन मुझमें नहीं
सहज प्रवृति का धनी नहीं

झूठा हूँ मैं
सत्य से डरता हूँ
त्याग से डरता हूँ
कविता मुझे आती नहीं
वाक्-पटुता मुझे नहीं
हँसना-हँसाना जानता नहीं
रसभरी बोली मुझमें नहीं

जन्म - 25 दिसम्बर, 1924 मृत्यु - 16 अगस्त, 2018

पद्म विभूषण, लोकमान्य तिलक अवार्ड, बेस्ट सांसद अवार्ड,
पंडित गोविन्द वल्लभपन्त अवार्ड, भारत रत्न
से सम्मानित

दोगला हूँ मैं
सादगी से दूर हूँ
संयम से दूर हूँ

कर्मठ मैं हूँ नहीं
स्वयंसेवक मैं नहीं
हिंदू दर्शन का ज्ञान नहीं
संघ शक्ति का बोध नहीं

और अटल? वो तो अटल है।
वो सब जो तुम बिल्कुल नहीं।
समझे? दिखा दर्पण?

कुछ और जन्म लगेंगे
कुछ और कर्म लगेंगे
कुछ और यत्न लगेंगे
अटल के अ तक पहुँचने में।

हिम्मत है?
चलें, समय कम है।

प्रोफेसर समीर खांडेकर
यांत्रिक अभियांत्रिकी विभाग

संपर्क
राजभाषा प्रकोष्ठ
भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान कानपुर (उ.प्र.)
दूरभाष-0512-259-7122
ईमेल-kbalani@iitk.ac.in, vedps@iitk.ac.in, sunitas@iitk.ac.in
वेब-http://www.iitk.ac.in/infocell/iitk/newhtml/Antas

अभिकल्प - सुनीता सिंह